ओ३म्

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् अपघ्नन्तो अरावणः॥

आर्य संकल्प

(बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा का मासिक मुख-पत्र)

वर्ष-39 मई-जून-जुलाई 2016 संयुक्तांक अंक-3

शत्-शत् नमन

बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
कार्यालय : श्री मुनीश्वरानन्द भवन, नयाटोला, पटना-4 (बिहार)

आर्य संकल्प

संरक्षक
भाई वीरेन्द्र, सभा प्रधान

प्रधान सम्पादक
रमेन्द्र कुमार गुप्ता
मोबाईल-9334184136

सम्पादक
संजय सत्यार्थी
मोबाईल-9006166168

सह सम्पादक
अरविन्द शास्त्री
मनोज शास्त्री
प्रेम कुमार आर्य

सम्पादक मंडल
ज्ञानेश्वर शर्मा
सत्य प्रिय शास्त्री

कोषाध्यक्ष
जयदेव कुमार आर्य

स्वत्वाधिकारी एवं प्रकाशक
बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
श्री मुनीश्वरानन्द भवन
नयाटोला, पटना-800 004

E-mail :
mantribraps@gmail.com

सदस्यता शुल्क
एक प्रति : 15/-
वार्षिक : 120/-

सम्पादकीय...

महर्षि की आन्तरिक वेदना

वेद में मनुष्य के लिये सबसे बड़ा उपदेश है कि वह विचार पूर्वक अपने और संसार के कल्याण के मार्ग पर चले । मनन नाम विचार का है, जिसके होते से ही मनुष्य नाम होता है, क्योंकि ईश्वर ने मनुष्य के शरीर में परमाणु आदि के संयोग विशेष इस प्रकार रचे हैं कि जिन से उनको ज्ञान की उत्पत्ति होती है । उसी ज्ञान से प्रभु के दिव्य गुणों को मनुष्य समझे और समझकर अपने जीवन में धारण करे । प्रभु का शुद्ध स्वरूप समझे बिना मनुष्य में विचार और आचार की पवित्रता कभी नहीं आ सकती । हम तभी मनुष्य बन सकते जब प्रभु की सृष्टी में उसके ज्ञान विज्ञान को देखकर अपनी उन्नति के लिये अपनी योग्यता के अनुसार उस पर चलने का व्रत लें ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी अपने लघु ग्रंथ स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाशः में स्पष्ट लिखा है कि ''मुनष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुःख और हानि लाभ को समझे । अन्यायकारी बलवान से भी न डरे और धर्मात्मा निर्वल से भी डरता रहे । इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं की चाहे वे महा अनाथ निर्बल और गुण रहित क्यों न हों । उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचारण और चाहे चक्रवर्ती सनाथ महाबलवान् और गुणवान भी हों तथापि उसका ताश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे, अर्थात् जहाँ तक हो सके वहाँ तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे । इस काम में चाहे उसको कितना ही दारूण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावे परन्तु इस मनुष्यपन रूप धर्म से पृथक कभी न होवे ।''

मनुष्य के लिये महर्षि दयानन्द का यह विचार अनुकरणीय है । आगे उन्होंने व्यवहार भानु में भी विद्या प्राप्ति के चार कर्म में एक मनन के बारे में लिखते हैं कि जो-जो शब्द, अर्थ और सम्बंध आत्मा में एकत्र हुए हैं उनका एकान्त में स्वस्थचित होकर विचार करना कि कौन शब्द किस शब्द, कौन अर्थ किस अर्थ, और कौन संबंध किस संबंध के साथ संबंध अर्थात् मेल रखता हैं और उसके मेल से किस प्रयोजन कि सिद्धी और उल्टे होने में क्या-क्या हानि होती है ।

संसार में जितने भी उपदेश हुए हैं, वे सभी मनुष्य के लिये ही है क्योंकि मनुष्य विवेकशील प्राणी है । मनुष्य में उपदेश ग्रहण करने की शक्ति है । कल्याण मार्ग पर चलना चाहने वालों के लिये सबसे पहली बात यह है कि वह जो कुछ सुने, पढ़े, उपदेश प्राप्त करे उसे वह पालन करे, अमल में लावे, आचरण करने लगे और अपने जीवन का हिस्सा बना लेवे । मानव जीवन की यही सार्थकता है । केवल मानव आकृति धारण कर मानव, मानव नहीं बन सकता, हितोपदेश में कहा गया है—

आहार निद्रा भयमैथुन च सामान्यमेतत् पशुर्भिर्तराणाम् ।
धर्मो ही तेषामधिको विशेषः, धर्मोहीनः पशुभिः समानः ।

भोजन करना, सोना, भयभीत होना और संतान उत्पन्न करना ये सभी पशुओं और मनुष्यों में समान रूप से पाया जाता है परन्तु धर्माचरण ही मनुष्य को पशुओं से अलग करता है, विशेष स्थान प्रदान करता है । इसलिये मनुष्य बनने का सर्वोत्तम उपाय यही है कि वह वेदोत, कर्मों को करे और धर्माचरण को अपनाये । ऋग्वेद में भी कहा गया है ''मनुर्भव'' अर्थात् हे प्राणी! तू मनुष्य बन । पशुओं को न पक्षियों को और न ही कीट पतंगों को । केवल मनुष्य को ही मनुष्य बनने का निर्देश है । इसका स्पष्ट अर्थ है कि अन्य प्राणी केवल स्वाभाविक ज्ञान लेकर जन्म लेता है और मरते दम तक स्वाभाविक ज्ञान में ही रहता है । परन्तु मनुष्य का स्वाभाविक ज्ञान माँ के स्तन से दूध खीचना और रोना है । बाकी जो कुछ भी सीखता है वह नैमितिक ज्ञान द्वारा प्राप्त करता है ।

आर्य संकल्प

-: सूची :-

क्रम	विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	वेद मंत्र	1
2.	वेद प्रार्थना	2
3.	मूर्तिपूजा	4
4.	आर्य समाज	10
5.	समाज निर्माण	17
6.	वेद	23
7.	सृष्टि का संचालक	24
8.	मनुष्य	25
9.	द्रोपदी	30
10.	होलिका दहन	39
11.	समाचार	44

इस पत्रिका में दिये गये लेख लेखकों के अपने विचार हैं, इससे सम्पादक का कोई सम्बन्ध नहीं है।

मई-जून-जुलाई 2016
(संयुक्तांक)

दुःख का स्वागत

नमः सु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयं विचृता बन्धमेतम् ।
यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमे नाके ऋधिरोहयैनम् ॥

(यजु० १२ । ६३)

शब्दार्थ—(निर्ऋते) हे कृच्छापत्ते ! भयंकर दुःख ! (ते) तुझे (सु) स्वागतपूर्वक (नमः) नमस्कार है (तिग्मतेजः) तीक्ष्ण तेज से युक्त तू (एतम्) इस (अयस्यम्) लोहमय दृढ़ (बन्धम्) बन्धन को (विचृत) काट डाल, दूर कर दे (यमेन यम्या) मन और बुद्धि के द्वारा (संविदाना) सद्विवेक प्राप्त कराती हुई (त्वम्) तू (एनम्) इस मनुष्य को (उत्तमे नाके) उत्तम सुखमय लोक में, आनन्द की उच्चतम अवस्था में (अधिरोहय) स्थापित कर।

भावार्थ—संसार में दुःख और सुख सबके ही ऊपर आते हैं। दुःख प्राप्त होने पर मूर्ख रोते हैं, परन्तु ज्ञानी उसका स्वागत करते हैं। किसी ने कहा है—

देह धरे का दण्ड है, सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगते ज्ञान से, मूर्ख भुगते रोय ॥

१. दुःख आने पर ज्ञानी और धीर वीर कहता है—दुःखी और आपत्तियो ! आओ आपका स्वागत है, आपको नमस्कार हो।

२. निर्ऋते ! तेरी धार बहुत तेज है, तू अपनी तीक्ष्ण धार से मेरे समस्त बन्धनों को काट दे। **'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।'** कर्मों को भोगकर ही उनसे छुटकारा मिल सकता है। कष्टों को सहकर ही हम बन्धनों से मुक्त हो सकते हैं।

३. कृच्छ्रापत्ते ! आओ ! दुःखरूपी भट्टी में पड़कर हमारा मन और हमारी बुद्धि निर्मल एवं पवित्र बनेगी। निर्मल मन और बुद्धि द्वारा हमे सद्ज्ञान तथा सद्विवेक की प्राप्ति होगी। इस सद्विवेक के द्वारा तू हमें उच्चतम आनन्द की स्थिति में पहुँचाएगी, अतः तू आ, हम तेरा स्वागत करते हैं। ■

वेद प्रार्थना

-आचार्य ज्ञानेश्वरार्य

यदंग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।
तवेतत्सत्यमङ्गिरः॥

ऋग्वेद 1/1/6

शब्दार्थः-यद्=जो, अंग=हे सबके परममित्र, **दशुषे**=आत्मबलिदान करने वाले का, **त्वम्**=तू, **अग्ने**=हे जगदीश्वर, **भद्रम्**=कल्याण, **करिष्यसि**=करता है, **तव**=तेरा, **एतत्**=यह, **सत्यम्**=व्रत है, स्वभाव है, नियम है, **अंगिरः**=रक्षा करनेवाला।

व्याख्या:-वेद के माध्यम से ईश्वर उपदेश करता है कि जो मनुष्य स्वार्थ को छोड़कर या गौण करके समाज राष्ट्र के हित तन-मन-धन का त्याग करता है, उसको मैं सुख देता हूँ, उसकी उन्नति करता हूँ। उसकी यश-कीर्ति को फैलाता हूँ। उसको दुःखों, कष्टों, अभावों, अन्यायों से रहित करके परमानन्द की प्राप्ति कराता हूँ। ईश्वर कहता है कि यह मेरा व्रत है, संकल्प है, नियम है, प्रतिज्ञा है, मेरा स्वभाव है, दानी-त्यागी व्यक्ति को सुख देना, इसके विपरीत जो व्यक्ति स्वार्थी, हिंसक, अन्यायी, पक्षपाती, झूठे, छली-कपटी हैं उनको मैं दुःख, पीड़ा, बन्धन, भय, चिन्ता प्रदान करता हूँ।

संसार में तो इसके विपरीत ही दिखाई देता है कि त्यागी, संयमी, आदर्श व्यक्तियों को तो अनेक प्रकार के दुःख भोगने पड़ते है और स्वार्थी, झूठे, छली-कपटी मौज उड़ा रहे हैं, सुख सम्पन्नता से युक्त होते हैं। ऐसी विपरीत परिस्थिति को देखकर सामान्य मनुष्य को यह संशय हो जाता है कि ईश्वर की, वेद की बातें सच्ची हैं या झूठी। अनेक बार तो सच्चे व्यक्ति, आदर्श व्यक्ति इन विपरीत परिस्थितियों के कारण अपने सच्चाई, आदर्श को छोड़कर बुरे व्यक्ति के समान आचरण करने वाले बन जाते हैं। उनका सत्य, धर्म, वेद, ईश्वर, कर्मफल, पुनर्जन्म आदि से विश्वास हट जाता है।

वस्तुतः यर्थाथ स्थिति यह है कि ईश्वर किसी मनुष्य का कल्याण केवल इतने मात्र से नहीं कर देता है कि कोई उसकी प्रार्थना करता है, मंत्रपाठ वेद प्रार्थना करता है, जप करता है, ध्यान करता है, स्वभाव करता है गीत-गाता है, यज्ञ करता है, दान देता है अपितु इन सब के साथ-साथ उस धार्मिक-ईश्वर भक्त व्यक्ति को स्वस्थ, बलवान्, धनवान्, विद्वान्, भी बनाना चाहिए।

आज प्राय: देखने में आता है कि प्रथम तो धार्मिक, आदर्श व्यवहार करनेवाले संगठित नहीं हैं और न वे बुरे व्यक्तियों को रोकने के लिए योजनाबद्ध रूप में विरोध करते है। अत: बुरे व्यक्ति अच्छे व्यक्तियों को दु:ख देने में सफल हो जाते हैं। व्यवहारकाल में अच्छे धार्मिक व्यक्ति भी किन्हीं विषयों में सूक्ष्मता से विचार किये बिना कार्य प्रारम्भ कर देते हैं। इसलिए भी उन्हें कष्ट उठाने पड़ते हैं। अनेक बार यह भी देखने में आता है कि बुरे व्यक्ति वाक् चातुर्य के कारण, वक्तृत्व शक्ति के कारण, अच्छे वकीलों के कारण, जनसामान्य को भड़काकर, मिथ्या आरोप लगाकर भी भ्रांतियाँ फैला देते हैं और उन्हें दोषी सिद्ध कराकर कष्ट पहुँचा देते हैं।

एक बात है कि धार्मिक-ईश्वर, भक्त व्यक्ति पूर्णरूपेण, सर्वात्मना, सर्वदा, सर्वथा, ईश्वर की आज्ञाओं का पालन नहीं करते हैं, वे भी कुछ मात्रा में ईश्वर-आज्ञा भंग करने के कारण दण्ड के भागी बन जाते हैं। अन्तिम, विशेष, जानने-समझने योग्य बात यह है कि ईश्वर समर्पण क्या है, यह किस प्रकार होता है, इसकी विधि क्या है?यह शस्त्रों को यर्थात् रूपमें पढ़े बिना, समझे बिना नहीं होता है और तदनुसार पूर्ण शक्ति, सामर्थ्य, पुरुषार्थ, ज्ञान, बल, त्याग, तप और समर्पण किए बिना भी ईश्वर कष्टों को दूर नहीं करता है।

ईश्वर की, वेद की, शास्त्रों की, ऋषियों की, सामान्य रूप से थोड़ी सी बातों का आचरण करके व्यक्ति यह मान लेता है कि मैं पूर्णरूपेण ईश्वर के समर्पित हूँ, उसकी समस्त आज्ञाओं का पालन कर रहा हूँ। वास्तव में वह मात्र 10-20 प्रतिशत ही समर्पित होता है, ऐसी परिस्थिति में भी ईश्वर उसका पूर्ण कल्याण नहीं करता है। जो जितनी मात्रा में समर्पित होता है उतनी मात्रा में ही ईश्वर उसका कल्याण करता है।

इसलिए वेद की बातों पर संशय नहीं करना चाहिये कि इसमें आत्मबलिदान को, स्वार्थत्यागी को, नि:स्वार्थ भावना वाले व्यक्ति को जो मन-वचन-शरीर से ईश्वर की आज्ञा के अनुसार ही करता है उसे निश्चित ही परमअलौकिक सुख प्रदान करता है।

आओ ईश्वर विश्वासी भक्तों, ईश्वर समर्पित स्वार्थत्यागी महानुभावो, हम सभी सर्वात्मना जैसे ईश्वर ने वेद में लिखा है तद्नुसार आचरण करें अपने व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय कर्त्तव्यों को कुशलता प्रवीणतापूर्वक, सतर्कता पूर्वक पूरा करते हुए ईश्वर को प्राप्त करें। हे परमप्रिय प्रभो! आपसे हमारी हार्दिक विनम्र प्रार्थना है कि आप हमारे अन्त:करण में ऐसी अटूट श्रद्धा भर दो कि हम जो कुछ करें, नि:स्वार्थ भावना से करें, आपको करने के लिए करें, हम पूर्ण समर्पित हो जावें।

●

ईश्वरोपासना एवं मूर्तिपूजा

– मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून

आजकल हमारे सनातन धर्मी पौराणिक बंधु मूर्तिपूजा को ईश्वरोपासना का पर्याय मानते हैं। वस्तुस्थिति क्या है?यह जानने के लिए इनसे जुड़े कुछ शाब्दिक अर्थ ईश्वर के पास बैठना, समीपस्थ होना, निकट होना है। इसमें यह अर्थ भी सम्मिलित है कि ईश्वर का अनुसंधान करनेवाले भक्त व उपासक को जानना है कि ईश्वर कहाँ हैं और उसे जानकर आवश्यकतानुसार उसके समीप उपस्थित होना या बैठना। ईश्वर कहाँ-कहाँ है, इसका उत्तर इस विशाल ब्राह्माण्ड के स्वरूप पर विचार करने से सामने आता है कि वह सर्वव्यापक है। सर्वव्यापक इसलिए है कि जो रचियता जहाँ रचना करता है, वहाँ वह उपस्थित, वर्तमान या मौजूद रहता है। ईश्वर ने, एक साथ वा एक समय में ही सूर्य, चन्द्र, तारे, पृथ्वी आकाश, समुद्र, नदियाँ, वायु, अग्नि, वन, पर्वत व प्राणीजगत को बनाया है। अतः स्वाभाविक है कि जहाँ-जहाँ रचना की गई है, वहाँ रचियता अर्थात् ईश्वर उपस्थित रहा है। उसने पृथ्वी की रचना की व उसके बाद से वह पृथ्वी पर प्राणीजगत जिसमें वृक्ष-वनस्पति, खाद्यान्न आदि सम्मिलित है, इनकी रचना करता आ रहा है। अतः इस प्रकार से वह सर्वव्यापक सिद्ध हो जाता है। इससे यह भी अनुमान किया जा सकता है कि ईश्वर को प्राप्त करने के लिए कहीं आना जाना नहीं है, वह तो हमारे भीतर ही उपस्थित है। अब दोनों एक ही स्थान पर, अर्थात् जीवात्मा व इसके भीतर ईश्वर, एक साथ सदा-सर्वदा रहते हैं, दोनों में देश व काल की दूरी नहीं है, अतः हर समय हम ईश्वर का अनुभव कर सकते हैं। ईश्वर का अनुभव करना व उसकी आज्ञाओं को जानकर उनका आचरण करना तथा प्रतिदिन प्रातः सायं व अधिक भी विचार-चिन्तन-ध्यान आदि के द्वारा उसकी उपस्थिति का अनुभव करना या अनुभव करने के लिए प्रयास करना तथा उसको संसार को बनाने , संचालन व धारण करने, हमें मनुष्य जन्म, सुख-सुविधायें, माता-पिता, भाई-बहिन, सुहृदय मित्र व सम्पति आदि देने के लिए उसका धन्यवाद करने, कृतज्ञता ज्ञापित करने को हम ईश्वरोपासना कह सकते हैं। यदि किसी को ईश्वर का अपनी आत्मा के भीतर अनुभव हो चुका है व जब ध्यान में बैठता है तो ईश्वर की अनुभूति होती है, ईश्वर की ही अनुभूति होने में उसे शंका या संशय नहीं है व उसकी अनुभूति यर्थात् है, तो यह उपासना की बहुत ऊँची स्थिति है। यदि अनुभव अभी नहीं हुआ है तो अनुभवके लिए शास्त्र व अनुभवियों की शरण में जाना उचित होगा। उपासक के लिए यह जांच पड़ताल करना बहुत आवश्यक है कि उपासनाचार्य, गुरु या

विद्वान् झूठा, कपटी, छली व स्वार्थी न हो तथा उसे ईश्वर व उसका अनुभव कराने का पूर्ण ज्ञान हो। इसका पता करना अत्यन्त कठिन कार्य है। बड़े-बड़े बुद्धिजीवि भी स्वर्थी, छली, कपटी, चालाक व कृत्रिम आचार्यों के जाल में फंसे हुए हैं, यह हम नित्य प्रति देख रहे हैं। उचित तो यह है कि ईश्वर प्राप्ति में सहायता मिले व सभी गुरु समान माने जायें। किसी एक को गुरु बना लेने पर कठिनाईयाँ आती हैं, जैसे कि आजकल गुरुडम चल रहा है, और हम अनुभव करते हैं कि ऐसे व्यक्तियों का कल्याण कम व कल्याण अधिक होने की सम्भावना रहती है। उनकी आध्यात्मिक प्रगति सीमित व रूक जाती है। इस समस्या के निदान के लिए प्राचीन ऋषि-मुनियों के ग्रंथों का नियमित स्वाध्याय करना आवश्यक होता है। यदि गुरु इन ग्रंथो को अनुपयोगी और अनावश्यक बतावें तो जो ज्ञान वह दे सके, ले कर फिर उन निषिद्ध किये गये ग्रंथों व उस विषय के अन्य-अन्य ग्रन्थों का अध्ययन कर ईश्वर के वास्तिविक स्वरूप, योग व ईश्वर प्राप्ति एवं साक्षात्कार करने के लिए स्वयं अभ्यास एवं प्रयत्न करें। ऐसा करने पर ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान व उसकी प्राप्ति, अनुभूति का साक्षात्कार शीघ्र व विलम्ब से अवश्य प्राप्त होगा। हम अनुभव करते हैं कि एक ही व्यक्ति को प्रथम व अन्तिम गुरु बना लेना, ईश्वरोपासना -ध्यान - समाधि अध्यात्म की प्रगतिमें बाधक है, ऐसा व्यक्ति असम्प्रज्ञात समाधि तक पहुँच सकेगा?इसमें संदेह है।

ईश्वर वह है जिससे यह संसार अस्तित्व में आता है, जिससे इसका संचालन, धारण व पालन होता है। और सृष्टि की आयु पूर्ण होने पर इसका प्रलय या संहार होता है। यह जानने के बाद आवश्यक है कि इस विशाल ब्रह्माण्ड को अस्तित्व में लाने वाली सत्ता में अन्य क्या-क्या गुण होने चाहिए व हैं, यह विचार करना उचित है। यह संसार क्योंकि अनादि अनन्त है अत: पहला गुण तो ईश्वर का अनादि व अनन्त होना आवश्यक है। दूसरा संसार की रचना बुद्धिपूर्वक की गई है, अत: ईश्वर का चेतन व बुद्धिमान होना भी आवश्यक है। ईश्वर के इस गुण को सर्वज्ञ कहते हैं अर्थात् वह ब्रह्माण्ड की रचना, संचालन, प्रलय, जीवों के कर्मों व उनकी फल रूपी व्यवस्था आदि के बारे में पूरा-पूरा ज्ञान रखता है। बड़े से बड़े विद्वान् व वैज्ञानिक ज्ञान व अनुभव में, उसके सम्मुख में जल की एक बूँद के ही समान है। इसी प्रकार अन्य गुणों में ईश्वर का सत्य, चित्त, आनन्द से परिपूर्ण, निराकार, सर्वशक्तिमान, सर्वाधार, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, सर्वव्यापक, अजन्मा, अमर आदि होना आवश्यक है। ईश्वरीय ज्ञान वेद के आधार पर महर्षि दयानन्द द्वारा प्रस्तुत ईश्वर के स्वरूप, जो कि आर्य समाज का दूसरा नियम है, पर भी दृष्टि डाल लेते हैं। यह नियम बताता है कि-ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्याकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार,

अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है। इस नियम से पूर्व के नियम में एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक तथ्य यह बताया गया है कि सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदिमूल परमेश्वर है। इसके अतिरिक्त ईश्वर इस संसार का पालन-कर्त्ता व प्रलयकर्त्ता है। वह सभी जीवात्माओं के जन्म-जन्मान्तरों के कर्मों, क्रियामाण, संचित व प्रारब्ध के अनुसार फल प्रदान करता है। जीवों के सुख व कल्याण के लिए उसने इस संसार या ब्रह्माण्ड की रचना की है। इस संसार को रचने में उसका अपना कोई व्यक्तिगत प्रयोजन नहीं है क्योंकि वह आप्त-काम अर्थात् आनन्द से परिपूर्ण है। उसको प्रत्येक प्रकार का सुख प्राप्त है, किसी भौतिक व अन्य सुख व आनन्द की उसे किंचित अपेक्षा नहीं है। सृष्टि बनाने के प्रयोजन को इस प्रकार समझ सकते हैं कि जिस प्रकार एक ज्ञानी किसी आज्ञानी के पूछने पर अपनी विद्या का प्रकाश करता है, वह चुप नही रह सकता अन्यथा वह भी अज्ञानी सिद्ध होगा जो उसके लिए क्लेश का कारण बनेगा। इसी प्रकार ईश्वर ने सृष्टि को बनाने, पालन करने व प्रलय करने की अपनी सामर्थ्य को सृष्टि की रचना व इसे प्रकाशित करके सत्य-सिद्ध व सफल किया है। इसी कारण व इसी प्रकार वह प्रत्येक कल्प में जीवों के सुख व उन्नति एवं मोक्ष के लिए सृष्टि की रचना व पालन करता है। यदि वह ऐसा न करे तो उस पर असमर्थ अथवा सर्वशक्तिमान न होने का आरोप लगेगा।

ईश्वर व ईश्वरोपासना को जानने के बाद अब मूर्तिपूजा के स्वरूप पर विचार करते हैं। मूर्तिपूजा शब्द ही कह रहा है कि भौतिक पदार्थों से निर्मित किसी आकृति की पूजा करना। यह आकृति किसी स्त्री, पुरुष, पशु या पक्षी आदि की हो सकती है। पूजा का अर्थ होता है कि किसी पदार्थ या व्यक्ति आदि के गुणों को जानकर उनसे यथायोग्य उपयोग व उपकार लेना, उसका सत्कार करना, सेवा करने की आवश्यकता हो तो सेवा करना आदि बनता है। मूर्ति क्योंकि पाषाण, काष्ठ व धातु आदि जड़ पदार्थों की बनी होती है, अतः वह पूर्णतः ज्ञान शून्य एवं जड़ ही है। किसी भी जड़ पदार्थ से निर्मित सभी मूर्तियाँ हमें उसके अनुरूप अतीत व वर्तमान के किसी व्यक्ति, पुरुष, महापुरुष या अन्य सत्ता को, जो उस आकृति के समान हो, स्मरण कराती हैं। उसकी पूजा करने की एकमात्र विधि, उसको साफ-सुरक्षित रखना व उसे टूट-फूट व नष्ट होने से बचाना है। यही उस जड़ मूर्ती-मूर्ति की पूजा हो सकती है, अन्य नहीं। मूर्ति के अचेतन होने से अन्य किसी प्रकार से उसकी सेवा करना नहीं बनता और यदि हम करें या अन्य कोई करता है तो वह निरर्थक, बुद्धिहीनता व समय की हानि है। यह मिथ्या मान्यता है व सिद्धान्त है कि मूर्ति में प्राण-प्रतिष्ठान करने से वह सजीव हो जाती है

और उसकी पूजा करने वालों को उसकी श्रद्धा, विश्वास व ज्ञान के अनुरूप लाभ होता है। संसार में कोई भी, धार्मिक विद्वान् व नेता या वैज्ञानिक भी, किसी तरह से किसी भी मूर्ति में प्राणों को प्रतिष्ठित नहीं कर सकता है। यह ईश्वरीय नियमों के विरूद्ध से असम्भव है। हम तो यहाँ तक कहेंगे कि ईश्वर स्वयं यदि चाहे भी, किसी मूर्ति में प्राणों व जीवात्मा की प्रतिष्ठान तो करता है और ही कर सकता है। प्रत्येक कार्य करने का अपना एक विधान, विधि तरीका होता है। उसके विपरीत करने से वह कार्य कदापि सम्पादित नहीं हो सकता है। ऐसा करना अपना मनोरथ-स्वार्थ सिद्ध करना तो हो सकता है परन्तु प्राण प्रतिष्ठा का कृत्य वास्तविक एवं सत्य नहीं है। यदि मान भी लें कि कुछ मंत्रों या श्लोकों को बोल कर प्राण प्रतिष्ठा कर दें, तो फिर उस मूर्ती में आँख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा, उदर, हृदय, मांशपेसियाँ आदि की प्रतिष्ठा क्यों छोड़ देते हैं, उसे क्यों नहीं करते?इसके भी मंत्र क्यों नहीं बना लेते। या बोल देते और कहें कि एक महापुरुष व देवता के सभी अंगों की प्रतिष्ठा कर दी गई है। यहाँ विचारणीय विषय है कि कोमा की स्थिति में भी शरीर में प्राण व सभी अंग होने पर भी मनुष्य बेसुध, बेहोश व निष्क्रिय रहता है। मूर्ति में तो शरीर, अंग-इन्द्रिय व अन्य अवयव होते ही नहीं हैं, फिर भी वह अपेक्षित कार्यों को कैसे पूरा कर देगी। अतः ऐसा करना ज्ञान, विज्ञान, सृष्टि नियमों व ईश्वरीय व्यवस्था के विरूद्ध होने से अमान्य, अस्वीकार्य, असत्य व मिथ्या है। कोई भी ज्ञानवान, बुद्धिमान, विवेकी, मेधावी, श्रद्धा अर्थात् सत्य में निष्ठा रखने वाला व्यक्ति इस प्रकार के कृत्यों, बातों व कथनों को स्वीकार नहीं कर सकता। जैसा कि हमने देखा कि ईश्वर निराकार, सर्वव्यापक व सर्वान्तरयामी है, वह हमारी आत्मा के भीतर हर क्षण समान रूप से उपस्थित रहता है, उससे बाहर ढूँढ़ने पर और वह भी किसी जड़ आकृति या मूर्ति में, तो यह आत्म-वंचना ही है। आज तक क्या किसी व्यक्ति को मूर्ति पूजा करने से ईश्वर की प्राप्ति हुई है?हमें लगता है कि ऐसा एक भी उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है। ऐसा तो अनेक उदाहरण है कि मूर्ति पूजा करने वालों को मूर्तिपूजा के भंजकों ने नष्ट भ्रष्ट कर दिया, शताब्दियों तक उन्होंने गुलाम रहकर अपना सर्वस्व मान-सम्मान-स्वाभिमान-इज्जत-आबरू सब कुछ खोई लुटाई है। तथाकथित देव-मूर्तियाँ तो अपनी रक्षा भी नहीं कर पाई और विध्वंशकों ने उन्हें बेइज्जत करके टुकड़े-टुकड़े कर दिया। सोमनाथ मंदिर का उदाहरण हमारे सामने है। मूर्तिपूजा ईश्वरोपासना नहीं है। ईश्वर वस्तुतः निराकार, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ व सर्वान्तर्यामी है, यह बुद्धिसंगत एवं प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है। क्या हम शिशुकाल से ही बच्चों में यह भावनाएं नहीं भर सकते कि उन्हें ईश्वर के गुणों का विचार

चिन्तन व ध्यान करते हुए साथ-साथ प्राणीमात्र पर उसके उपकारों के लिए उसका धन्यवाद करना है। 'सन्ध्योपासना' की वेदसम्मत, वेद-मंत्र व उसके हिन्दी अनुवाद-भाष्य सहित विधि हमारे पास है। जिसे प्रतिदिन प्रातः व सायं करके हम ईश्वर के स्वरूप को जानकर उसका अनुभव कर उसे प्राप्त भी कर सकते हैं जिससे धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की सिद्धि कालान्तर में होती है। यह शब्द प्रमाण या आप्त प्रमाण है, अतः इसमें किसी को भी किसी प्रकार का संदेह नहीं होना चाहिए। इससे कुछ लोगों के स्वार्थों के लिए हम असत्य मार्ग पर चलकर अपनी सर्वस्व की हानी होने का खतरा व रिस्क ले सकते हैं?पिछली गलतियों का सुधार हम व हमारे पूर्वज बहुत बलिदानी व भारी कीमत चुका कर पाये हैं और सम्भवतः यह अन्तिम अवसर ईश्वर ने दिया है। हमें लगता है कि कोई भी बुद्धिमान व विवेकी दोबारा यह खतरा लेने के लिए सहमत नहीं होगा। मूर्तिपूजा का आधार मध्यकालीन अवतारवाद की कल्पना पर आधारित है और उसी काल मे रचे गये पुराणादि ग्रन्थों से अवतार व मूर्तिपूजा आरम्भ हुई है। राम, कृष्ण व दुर्गा आदि को ईश्वर का अवतार माना जाता है। कहा जाता है कि ईश्वर ने दुष्ट-दमन के लिए इन महापुरुषों के शरीरों में प्रवेश कर दुष्टों का दमन व संहार किया। यहाँ प्रश्न उठता है कि बड़े से बड़े दुष्ट जिसको निराकार ईश्वर ही जन्म व उसके शरीर को पुष्टि देता है, पालन करता व संरक्षण करता है, वह उसे अपनी शक्ति से समाप्त नहीं कर सकता?**एक भूकम्प के झटके से हजारों बड़े-बड़े भवन धाराशायी हो जाते हैं व हजारों-लाखों की संख्या मे लोग मर जाते हैं, इसके लिए तो ईश्वर को अवतार लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती, फिर एक या कुछ अधर्मियों को मारने के लिए उसे अवतार लेना पड़ता है, इस तर्क में नाममात्र का भी दम नहीं है।** भगवान कृष्ण के बाद ईश्वर ने अवतार नहीं लिया तो क्या इसका यह अर्थ माने कि देश व विश्व में सर्वत्र धर्म ही धर्म, शान्ति ही शान्ति है, अधर्म कहीं नहीं है?क्या कोई अधर्मी नहीं हे जिसके वध के लिए ईश्वर को अवतार लेना पड़े?आज अधर्मियों की संख्या इतिहास में पूर्व कालों से सबसे अधिक है, ऐसा विवेकी लोग स्वीकार करते हैं जो इस बात का प्रमाण है कि ईश्वर का अवतार नहीं होता क्योंकि पिछले 5,000 वर्षों में ऐसा नहीं हुआ है। एक महर्षि दयानन्द अवश्य हुए हैं परन्तु उन्होंने स्वयं के अवतार होने का व पूर्व में ईश्वर के किसी अवतार के होने का प्रबल तर्कों वा युक्तियों से खण्डन किया है और वेद के प्रमाणों से भी दिखाया है कि ईश्वर अवतार न तो लेता है और न ले सकता है।

जो ईश्वर अवतार लिए बिना अनन्त व सीमातीत ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति व प्रलय कर सकता

है, उसे क्षुद्र रावण, कंस आदि दानव, मानव, राक्षसों के वध के लिए जन्म धारण करना पड़े तो इस तर्क को किसी विवेकी की बुद्धि स्वीकार नहीं करती, स्वयं हमारी भी स्वीकार नहीं कर रही है। ईश्वर अजन्मा व अविनाशी कहा जाता है। अजन्मा ईश्वर अवतार के रूप में जन्म लेता है तो वह अजन्मा नहीं रहता और न ही सर्वशक्तिमान रहता है। यदि ईश्वर से उसके यह गुण ही पृथक हो गये, तो ईश्वर, ईश्वर रहा ही नहीं। ऐसा होना असम्भव है, अतः अवतारवाद की कल्पना व सिद्धान्त मिथ्या है। इसको छोड़कर सत्य-चित-आनन्दस्वरूप-निराकार-सर्वशक्तिमान-सर्वव्यापक-सर्वान्तर्यामी ईश्वर की उपसना से मनुष्य अपनी समस्त मनोरथ सिद्ध कर सकता है, हमने भी कुछ किए हैं। वेदों में मूर्तिपूजा का किसी प्रकार से उल्लेख, विधान व समर्थन नहीं है। वेद ईश्वर का, स्वयं का, अपना निज का ज्ञान है। वेद यम-नियम, विचार-चिन्तन व ध्यान आदि से ईश्वर की उपासना का विधान करते हैं। जिस प्रकार से कोई भक्त मूर्ति की पूजा करता है उससे न तो मूर्ति पूजा बनती है और ईश्वरोपासना की बात ही नहीं है। मूर्ति को जो अन्न, फल व दुग्ध आदि पदार्थ अर्पित करते हैं वह मूर्ति उनमें से किसी भी पदार्थ को ग्रहण या स्वीकार नहीं करती, उसका उपभोग तो हमारे पुजारी बन्धु करते हैं। अतः मूर्तिपूजा ईश्वर की पूजा या उपासना नहीं हैं । जहाँ तक पुराणों का प्रश्न है, तो ऐसा होता है कि लोग अपने मजहब का प्रचार करने के लिए ग्रन्थों की रचना करते हैं। मध्यकाल में भारत व भारत से बाहर भी एक नहीं अपितु अनेकानेक ग्रंथों की रचना हुई; वह सभी धार्मिक ग्रंथ कहे जाते हैं। उनमें ईश्वर, जीवात्मा, प्रकृति, सृष्टि रचना, मनुष्यों के कर्त्तव्यों आदि पर भिन्न-भिन्न विचार पाए जाते हैं जिनमें से अनेक विचार-मत-सिद्धान्त आदि वैज्ञानिक खोजों से सिद्ध हुई सत्य मान्यताओं के विरूद्ध भी है। प्रायः सभी मतों में सदाचार, अहिंसा, परोपकार, प्राणी-रक्षा व मानवीयता के सिद्धान्तों का अभाव है। अतः वेद, बुद्धि, ज्ञान, विज्ञान, सत्य, विवेक विरूद्ध इन साम्प्रदायिक ग्रंथों के सिद्धान्तों को अस्वीकार कर किसी भी मनुष्य को अपना अनमोल जीवन व्यर्थ नहीं करना चहिए अपितु वेद के सत्य सिद्धान्तों व मान्यताओं का पालन करते हुए धर्म, अर्थ, काम, व मोक्ष की प्राप्ति कर जीवन के उद्देश्य व लक्ष्य, अभ्युदय व निःश्रेयस अर्थात् मोक्ष प्राप्त, करना चाहिये। हम पाठकों को महर्षि दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश से आरम्भ करके, ऋगवेदादिभाष्य भूमिका, आर्याभिविनय, संस्कार विधि, उपनिषद् सभी 6 दर्शन, वेद आदि के स्वाध्याय करने की प्रेरणा करेंगे और साक्षी देंगे कि इनका अध्ययन कर अध्येताओं का जीवन सफल होगा। ●

आर्य समाज क्रान्तिकारीयों की जननी है

खुशहाल चन्द आर्य
कोलकाता

आर्य समाज क्रान्तिकारियों की जननी क्यों न हो, जिसके संस्थापक महर्षि दयानन्द स्वयं देशभक्त व क्रान्तिकारी थे, जिससे सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में काम किया था। उनका गुरु स्वामी विरजानन्द प्रज्ञाचक्षु होते हुए भी सन् 1857 के संग्राम में एक विशेष भूमिका निभाई थी और विरजानन्द के गुरु स्वामी पूर्णानन्द भी एक अच्छे बड़े क्रान्तिकारी थे, उनके बारे में भी इतिहास बतलाता है कि उन्होंने भी 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में काफी भाग लिया था। जिस संस्था के संस्थापक सन् 1857 के स्वतंत्र संग्राम में भाग ही नहीं लिया बल्कि अपने अमर ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश में यह लिखकर कि **विदेशी राज्य चाहे कितना भी अच्छा क्यों न हो यानि माता-पिता के समान सुखदायक हो, फिर भी उससे अपना स्वदेशी राज्य कहीं अच्छा होता है।** इस उद्घोष से क्रान्तिकारियों ने बहुत प्रेरणा ली। बाल गंगाधर तिलक ने तो सत्यार्थ प्रकाश पढ़कर यहाँ तक कह दिया कि आजादी हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। इसी प्रकार स्वमीजी ने सत्यार्थ प्रकाश में पढ़कर यहाँ तक कह दिया कि पारस पत्थर हो या नहीं परन्तु भारत प्राचीन काल में पारस पत्थर जरूर था जिसके सम्पर्क में आने से विदेशी सोना यानि शिक्षित व सभ्य बन जाते थे। तीसरी घटना स्वामीजी की जीवनी में भी आती है कि अजमेर में लार्ड ब्रुक ने स्वामीजी से पूछा कि आपको अपने प्रचार कार्य को करने में किसी प्रकार की तकलीफ तो नहीं है तब स्वामीजी ने कहा कि अंग्रेजी राज्य में कोई तकलीफ नहीं है। मैं अपना प्रचार अच्छी प्रकार से कर पा रहा हूँ। तब लार्ड ब्रुक ने कहा कि जब अंग्रेजी राज्य इतना अच्छा है तो आप जब ईश्वर से प्रार्थना करते हैं तब आप अंग्रेजी राज्य के विस्तार करने की भी प्रार्थना कर दिया करें। तब स्वामीजी ने कहा कि मैं तो नित्य ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि अंग्रेजी राज्य जल्द से जल्द नष्ट हो और भारत आजाद हो। यह उत्तर सुनकर लार्ड ब्रुक आवाक् रह गया और उसने इंगलैण्ड में समाचार भेजा कि स्वामी दयानन्द तो कोई साधारण संन्यासी नहीं है, यह तो कोई बागी फकीर है, इसके ऊपर हमें कड़ी नजर रखनी होगी। इसके बाद स्वामीजी के ऊपर अंग्रेजों की नजर रहने लगी और उनको मारने में भी अंग्रेजों का पूरा हाथ था। इससे सिद्ध होता है कि स्वामीजी वेदों के प्रकाण्ड विद्वान और महान् चरित्रवान तो थे ही साथ ही साथ क्रान्तिकारी विचार भी उनमें कूट-कूट कर भरे थे।

जिस संस्था के संस्थापक स्वामी दयानन्द जैसा क्रान्तिकारी हो तो व संस्था कितनी क्रान्तिकारी होगी इसकी कल्पना स्वयं ही कर

सकते हैं। भारत के सन् 1942 के स्वतंत्रता संग्राम में आर्य समाज ने जिस ढंग से बढ़-चढ़कर भाग लिया उसका वर्णन पट्टाभि सीतारमैय्या जो कांग्रेस के अध्यक्ष थे, उसने स्वयं कांग्रेस का इतिहास लिखा है उसमें लिखते हैं कि सन् 1942 की स्वतंत्रता की लड़ाई में आर्य समाज सबसे आगे था और 85 प्रतिशत आर्य समाजी ही जेलों में थे। वैसे तो अनेकों आर्य समाजी क्रान्तिकारी हुए हैं जिन्होंने भारत माता को गुलामी की जंजीरों से निकालने के लिए अपना पूरा जीवन देश के लिए न्यौछावर कर दिया और अनेकों ने फांसी के फंदे को चूमा। उनमें भी पाँच आर्य समाजी क्रान्तिकारी मुख्य है जिनका नाम क्रान्तिकारीयों की श्रृंखला में बहुत ऊँचे स्थान पर आता है। वे नाम इसी भाँति है। (1) अमर शहीद रामप्रसाद विस्मिल (2) श्यामजी कृष्ण वर्मा (3) लाला लाजपत राय (4) भाई परमानन्द (5) लाला हरदयाल, एम. ए.

इनका अलग-अलग संक्षिप्त जीवन चरित्र है इस भाँति है-

(1) रामप्रसाद विस्मिलः-रामप्रसाद विस्मिल एक बड़ा चरित्रवान, बलिष्ठ, परम साहसी व देश के प्रति समर्पित भाव वाला क्रान्तिकारी था। इनका जन्म उत्तर प्रदेश के शाहजहाँपुर नगर में सन् 1897 में हुआ था। इनके पिताजी का नाम मुरलीधर था। आर्य समाज मंदिर इनके घर के ही पास था इसलिए आर्य समाज में आने-जाने लगे। फिर इनका सम्पर्क सोमदेव जी से हुआ और उनसे सत्यार्थ प्रकाश पढ़ी जिससे वे पक्के आर्य समाजी हो गये। उनके पिताजी पक्के सनातनी थे, इसलिए ये विस्मिल का आर्य समाज में जाना पसन्द नहीं करते थे। एक दिन पिता ने कहा कि विस्मिल! या तो तुम आर्य समाज में जाना छोड़ दो या फिर घर छोड़ दो। विस्मिल ने घर छोड़ दिया और आर्य समाज में रहने लगे। कुछ दिनों बाद पिताजी ने घर पर बुला लिया। यह थी विस्मिल की आर्य समाज के प्रति भक्ति व आस्था। क्रान्तिकारीयों में विस्मिल का नाम बड़ी श्रद्धा से लिया जाता है। क्रान्तिकारियों के मुख्य कार्यों में काकोरी काण्ड को प्रमुखता दी जाती है कारण जिस समय क्रान्तिकारीयों के पास धन का अभाव था। हथियार खरीदने में तकलीफ हो रही थी, तब काकोरी स्टेशन पर सरकारी खजाने को लूटा गया था। यह काण्ड विस्मिल की प्रधानता में किया गया था जो अति सफल रहा। इसी काण्ड के कारण विस्मिल को गोरखपुर जेल में रखा गया और इसी जेल में फाँसी दी गई। विस्मिल का आर्यत्व इसी जेल में झलकता है कि विस्मिल जेल में रहते हुए नित्य हवन करके ही भोजन करते थे और फाँसी के फन्दे को चूमने से पहले उसने स्तुति प्रार्थनोपासना के आठो मंत्रों का पाठ किया था। इससे बढ़कर आर्य समाजी होने का क्या सबूत हो सकता है।

(2)श्यामजी कृष्ण वर्मा-वर्माजी एक बहुत ही तीव्र बुद्धि के होनहार युवक थे। इनका जन्म 4 अक्टूबर 1857 में हुआ था। इनके माता पिता का निधन उनकी छोटी आवस्था में हो गया

था। ये निर्धन परिवार के होने पर भी एक मेधावी छात्र होने से धनाढ्य लोगों ने इनको अपने पास काम करने के लिए रखा और उनके पढ़ने की व्यवस्था भी उन्होंने ही की। सन् 1874 में महर्षि दयानन्द वैदिक धर्म के प्रचार प्रसार के लिए मुम्बई आये थे तब वर्माजी ने स्वामीजी के एक व्याख्यान से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने स्वामीजी को अपना गुरु मान लिया और आर्य समाजी ही नहीं बने बल्कि आर्य समाज के उपदेशक भी बन गए। वर्माजी हिन्दी, संस्कृत, के साथ-साथ अंग्रजी के भी बड़े विद्वान थे। मानियर विलियम के कहने पर महर्षि दयानन्द ने ही वर्मा जी को ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत पढ़ाने के लिए लन्दन भेजा था। स्वामीजी का श्यामजी वर्मा को लन्दन भेजने का उद्देश्य वेद प्रचार करना तथा क्रान्तिकारी भावना को फैलाने का भी था। वर्माजी ऑक्सफोर्ड यूनिभर्सिटी में रहते हुए एक 'इण्डिया हाउस' की स्थापना सन् 1905 ई. में की जिसमें भारतीयों को क्रान्तिकारी बनने की शिक्षा दी जाती थी और वह क्रान्तिकारीयों का निवास स्थल बन गया था। अंग्रेजी सरकार की सी.आई.डी. के अधिक पीछा करने से वर्माजी वीर सावरकर को पूरी जिम्मेवारी देकर स्वयं पेरीस (फ्रांस) 1907 में चले गए। भारत के सभी क्रान्तिकारी नेता लाला हरदयाल, एम. ए. आदि इसी इण्डिया हाउस में ठहरा करते थे और इसी में रह कर मदनलाल धींगरा ने विलियम कर्जन वाइली को मारा था और उधम सिंह ने जनरल डायर जिसने जलियांवाले बाग का हत्याकाण्ड करवाया था। उसके मर जाने से उधम सिंह ने जनरल डायर को प्रोत्साहन देने वाले माइकल ओडवेयर को मारा था। वर्माजी सन् 1914 तक पेरीस में रहकर फिर स्विटजरलैण्ड होते हुए जेनेवा चले गये। वहाँ उनकी मृत्यु 31 मई 1930 में हो गई। क्रान्ति की आग सबसे पहले वर्माजी ने ही लगाई थी इसलिए इनको क्रान्तिकारीयों का गुरु भी कहा जाता है। गुजरात के मुख्यमंत्री आज के देश के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने इस क्रान्तिकारी की अन्तिम इच्छा को पूर्ण करते हुए इनकी अस्थियों को 24 अगस्त 2003 को भारतवर्ष की पावन धरती पर लाने का पुण्य कार्य किया है।

(3)लाला लाजपत रायः-लालाजी एक पक्के आर्य समाजी थे। उन्होंने ही कहा था कि महर्षि दयानन्द मेरे धर्म के गुरु हैं और आर्य समाज मेरी धर्म की माता है। मैंने आर्य समाज से ही देश भक्ति सीखी है। ऐसे महामानव का जन्म 28 जनवरी 1865 में लुधियाना जिला में जगरांव ग्राम में पिता राधाकृष्ण, माता गुलाबी देवी के घर हुआ था। लालाजी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे एक अच्छे ओजस्वी वक्ता, समर्पित समाज सेवी, सिद्ध लेखक, कुशल सम्पादक, कट्टर राष्ट्रवादी शिक्षाशास्त्री एवं निर्भिक क्रान्तिकारी नेता थे। उनके कारनामों को देखकर सभी लोग उन्हें 'पंजाब केशरी' कहने लगे। लालाजी अपनी प्रारम्भिक शिक्षा पास करके लाहौर आ गए। यहाँ

पर उन्होंने गवर्मेंट कॉलेज में प्रवेश लिया तथा 1882 में एफ-एफ और कानून की परीक्षा भी साथ-साथ ही कर ली। यहाँ पर उनके सहपाठी हंसराज तथा पं. गुरुदत्त थे, उन्हीं के माम से उनका सम्पर्क आर्य समाज से हुआ।

लालाजी वकालत पास करके रोहतक और हिसार में वकालत की, साथ ही राजनीति का कार्य भी करते रहे। वे 1888 में कांग्रेस के अधिवेशन में इलाहाबाद गये। इसके बाद वे 1907 में पं. गोपालकृष्ण गोखले के साथ एक शिष्ट मंडल के सदस्य के रूप में इंगलैण्ड गए और वहाँ से अमेरिका चले गए। वहाँ अनेकों क्रान्तिकारी से सम्पर्क किया। इससे पहले यहाँ 1905 में जब बनारस में कांग्रेस अधिवेशन था, तब ब्रिटिश युवराज के भारत आगमन पर उनका स्वागत करने का प्रस्ताव आया, तब स्वाभीमानी लालाजी ने इसका डटकर विरोध किया। तभी से कांग्रेस में दो दल हो गए। एक गर्म दल जिसके नेता थे लालाजी, तिलक जी व सुरेन्द्रनाथ पॉल और नरम दल के नेता थे, गोपालकृष्ण गोखले और गोविन्द राणाडे। गोविन्द रानाडे भी महर्षि दयानन्द के पक्के शिष्य थे। इन्होंने आर्य समाज की मुम्बई में स्थापना के बाद महर्षि के स्वागत में पूना में बहुत बड़ा जुलूस निकाला था। उससे महर्षि की प्रसिद्धि बहुत बढ़ी। कांग्रेस में हुए दो दलों में गर्म दल का मानना था कि आजादी केवल गिड़गिडाने से नहीं मिलेगी, बल्कि उसके लिए बलिदान देना पड़ेगा। नरम दल वाले इसके विरोधी थे, परन्तु कांग्रेस में प्रभाव गरम दल वालों का ही था।

पंजाब के 1907 वाले किसान क्रान्ति मे लालाजी तथा अजीत सिंह (जो अमर शहीद भगत सिंह के चाचाजी थे) खुला साथ दिया, जिससे इन दोनों को वर्मा के माण्डले जेल में अलग-अलग बन्दी बनाकर रखा। परन्तु जनता के रोष से उनको छह महीने बाद ही छोड़ दिया गया। जेल में लालाजी कई ग्रंथो की रचना की जिनमें भारत का इतिहास (प्रथम भाग) महाराजा अशोक, शिवाजी, दि आर्य समाज, महर्षि दयानन्द, योगीराज श्रीकृष्ण आदि मुख्य हैं। माण्डले जेल से आने के बाद भारत में उनका भरपूर स्वागत हुआ और उनकी क्रान्तिकारी गतिविधियाँ और अधिक तीव्रगति से चलने लगी। इसके बाद लालाजी फिर इंग्लैण्ड गये, वहाँ आने का वीजा न मिलने से वहीं से जापान और अमेरिका आदि देशों में जा कर भारत की स्वतंत्रता के लिए अपना प्रबल प्रयास किया। फिर देश में आकर गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन में भाग लिया। परन्तु गाधी तथा कांग्रेस की मुस्लिम लिग तुष्टि से रूष्ट होकर काँग्रेस छोड़ दी। फिर 1924 में स्वामी श्रद्धानन्द व मालवीयजी के साथ हिन्दू महासभा की स्थापना की और इसका पहला अधिवेशन 1925 में कलकत्ता किया जिसकी अध्यक्षता लालाजी ने की। इसके बाद 8 नवम्बर 1927 में ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने भारत के भावी संविधान पर रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए एक आयोग का गठन हुआ

जिसके अध्यक्ष जॉन साइमन थे। इस आयोग में कोई भी भारतीय न होने से इस आयोग का भारत में विरोध हुआ और यह साईमन आयोग 30 अक्टूबर 1928 को लाहौर पहुँचा। इसका विरोध करने के लिए लालाजी ने एक जुलूस निकाला, जिसमें 'साईमन गो बैक' के गगनचुम्बी नारे लगाए गए। सरकार ने 144वीं धारा लगा दी फिर भी जुलूस आगे बढ़ता गया। इस शांतिपूर्ण ढंग से विरोध प्रदर्शन करते हुए इस जुलूस पर सांडर्स ने क्रूरता से लाठी चलवा दी और लालाजी को लाठियों से इतना पीटा कि वे बुरी तरह घायल हो गए, तब लालाजी ने सिंह गरजना करते हुए कहा मेरे सीने में लगी एक-एक लाठी ब्रिटिश सरकार के ताबूत में कील का काम करेगी और लालाजी का स्वर्गवास 17 नवम्बर 1928 को हो गया। लालाजी की मृत्यु का बदला सरदार भगतसिंह, राजगुरु व सुखदेव ने 'सांडर्स' को गोली मारकर लिया।

(4) **भाई परमानन्दः**-भाई परमानन्द का जन्म 4 नवम्बर 1976 में पिता भाई ताराचन्द, माता मथुरा देवी के घर करिवाल (पंजाब) में हुआ था। ये अमर बलिदानी भाईमुकुन्द के चचेरे भाई थे जिनको लार्ड हार्डिंग के जुलूस पर बम फेंकने के केस में फांसी की सजा मिली थी। भाईजी बचपन से ही बड़े प्रतिभा संपन्न तथा मेधावी छात्र थे। उस समय आर्य समाज का बड़ा जोर था। ये सत्यार्थ प्रकाश तथा पं० लेखराम के लेखों को पढ़कर पक्के आर्य समाजी बन गए। ये केवल आर्य समाज सदस्य ही नहीं थे, पर एक बड़े उपदेशक भी थे। इनमें वैदिक मिशनरी के भाव कूट-कूट कर भरे थे। उन्होंने 1902 ई० में पंजाब विश्वविद्यालय से एम. ए. की परीक्षा पास की, फिर वे वेद-प्रचार के लिए 1905 में अफ्रीका चले गये। प्रचार करते-करते वे जोहान्सवर्ग पहुँचे तो वहाँ महात्मा गाँधी भी उनसे मिलने आये। उसी समय लालालाजपत राय भी क्रान्तिकारीयों में स्वतंत्रता के भाव जगाने के लिए लन्दन आये हुए थे। लालाजी ने भाईजी को लन्दन बुला लिया और वहाँ 'इंडिया हाउस' में वे, लाला हरदयाल और वीर सावरकर से मिले। अब भाईजी वेद प्रचार के साथ-साथ क्रान्तिकारी भावना फैलाने का काम भी बहुत जोर-शोर से करने लगे।

भाईजी 1907 में एकबार भारत में आकर फिर वे अमेरिका चले गये। वहाँ से करतार सिंह सराभा से अन्य कई क्रान्तिकारीयों से मिलकर उनके दिलों में स्वतंत्रता की आग जलाई और वे 1913 में पुनः भारत आ गए। अगस्त 1914 में प्रथम विश्वयुद्ध आरम्भ हो गया था। भाई परमानन्द जी तथा गदर पार्टी के क्रान्तिकारीयों द्वारा एक बैठक बुलाई गयी जिसमें करतार सिंह सराभा, भाई परमानन्द, रासबिहारीबोस, शतीसचन्द्रनाथ सन्याल व गणेश पिंगले मुख्य थे। इन्होंने मिलकर एक योजना बनाई कि सन् 1857 की तरह ही हमें देश में विद्रोह करके देश को स्वतंत्र करवाना चाहिए। इसके लिए 21 फरवरी 1925 को समय भी निश्चित कर दिया गया। इन

क्रान्तिकारीयों ने आगरा, कानपुर, इलाहाबाद, बनारस, लखनऊ, लाहौर, फिरोजपुर आदि छावनियों में जाकर सैनिकों से समर्थन भी कर लिया। बगावत करने की पूरी तैयारी हो गई थी परन्तु गदर पार्टी का ही एक क्रान्तिकारी कृपाल सिंह ने गद्दारी की और पूरा भेद पुलिस को दे दिये जिससे सारी योजना का भंडाफोर हो गया और चारों तरफ पुलिस का दमन चक्र चालू हो गया। खोज-खोज कर रासबिहारीबोस जो छुपकर जापान चला गया था, को छोड़कर सभी क्रान्तिकारी का पकड़ लिया गया और छावनियों से सब हथियार ले लिये गये और योजना को नष्ट कर दिया गया। इस योजना के तहत 61 अभियुक्तों पर अभियोग चला जिनमें 15 नवम्बर 1925 को भाई परमानन्द समेत 17 क्रान्तिकारीयों को फाँसी की सजा सुनाई गई। पर किसी कारण से भाईजी की फांसी की सजा को कालापानी की कारावास में बदल दिया गया और 20 अप्रैल 1920 को भाई जी को रिहा कर दिया गया। तत्पश्चात् भाई जी अपनी पत्नी जो आर्य कन्या पाठशाला में पढ़ाती थी, उनके साथ बाकी जीवन लाहौर में रहकर बिताया। आगे भी भाई जी राजनीति में भाग लेते रहे। 1920 में तिलक की मृत्यु के बाद कांग्रेस की बागडोर गाँधी के हाथ में आ गई। उनकी मुस्लिम तुष्टिकरण की नीति भाईजी को पसन्द नहीं थी। इसलिए कई हिन्दू नेता जिनमें डॉ बी.एस. मुंजे पं० मदन मोहन मालवीय, स्वामी श्रद्धानन्द व लाला लाजपतराय मुख्य थे। उनसे मिलकर हिन्दू महासभा की स्थापना की जिससे हिन्दूओं का पक्ष कुछ मजबूत बनने लगा। सन् 1934 में भाई जी हिन्दू महासभा के अध्यक्ष चुने गए। वीर सावरकर को 1937 में रत्नगिरि जेल से मुक्त कर दिया गया, तब 1937 में वीरसावरकर को हिन्दू महासभा का अध्यक्ष बनाया गया, तब से इस संस्था में जान आ गई। भाई जी यद्यपि हिन्दू-मुस्लिम एकता के समर्थक थे परन्तु पाकिस्तान बनाने का सदा विरोध किया। परन्तु पाकिस्तान बन जाने पर इनको बड़ा आघात पहुँचा और 8 दिसम्बर 1947 को वे सदा-सदा के लिए इस संसार को छोड़कर चले गए।

(5) **लाला हरदयालः**-लाला हरदयाल जी एम.ए. एक अद्भुत प्रतिभा के धनी तथा आदर्श क्रान्तिकारी थे। उनका जन्म दिल्ली के श्री गौरी दयाल माथुर जी के यहाँ 14 अक्टूबर 1884 में हुआ। लाला हरदयाल अपनी अद्भुत प्रतिभा का प्रमाण अपनी प्रारंभिक विद्यार्थी जीवन में ही दिखना आरम्भ कर दिया था। हरदयाल जी दिल्ली के एक कॉलेज से बी.ए. करने के बाद उन्होंने लाहौर कॉलेज से अंग्रजी भाषा और साहित्य में एम.ए. किया। वहाँ पर उन्होंने दो साल की पढ़ाई केवल एक साल में पूरी कर ली और वह भी 97 प्रतिशत अंक लेकर तथा युनिवर्सिटी में प्रथम स्थान प्रप्त करके। उनकी उत्तर पुस्तिका देखकर परीक्षकों ने कहा कि इस विद्यार्थी को आगे पढ़ाने के लिए हमारे पास कुछ भी नहीं है। उनकी इस प्रतिभा के कारण ही उन्हें सरकार की

ओर से छात्रवृत्ति मिली तथा उन्हें अध्ययन के लिए लन्दन ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी में भेजा गया। वहाँ भी उन्होंने अपने प्राध्यापकों पर अपनी अद्भुत प्रतिभा की छाप शीघ्र ही डाल ली। महर्षि दयानन्द जी के अनन्य भक्त तथा क्रान्तिकारीयों के आदि गुरु श्यामजी कृष्ण, वर्माजी ने लंदन में, ''इंडिया हाउस'' क्रान्तिकारीयों की शरणास्थली ली थी। यहाँ हरदयालजी की भेंट श्यामाजी कृष्ण वर्मा भाई परमानन्द, वीर सावरकर आदि से हुई। इनके सम्पर्क में आने से हरदयाल को राष्ट्रभक्ति की धुन ऐसी लग गई कि उन्होंने ऑक्सफोर्ड की छात्रवृत्ति भी लेना बंद कर दिया और युनिवर्सिटी से त्याग-पत्र देकर केवल राष्ट्र भक्ति का कार्य ही करने लगे। हरदयाल जी की वाणी में एक जादू जैसा था जिससे क्रान्तिकारियों पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता था।

क्रान्तिकारीयों के परामर्श से वे भारत में आन्दोलन को तेज करने के लिए लाहौर आ गए। यहाँ उन्होंने एक क्रान्तिकारी आश्रम का गठन किया जिसमें लाला हनुमन्त सहाय, मास्टर अमीचन्द, अवधबिहारी लाल व भाई बालमुकुन्द जिनको दिल्ली बमकाण्ड में फांसी हुई थी। इन क्रान्तिकारीयों को तैयार करने में लाला हरदयाल जी की ही देन है। उनके कार्यों की भनक सरकार को पड़ जाने से उनके पिछे गुप्तचर, हर समय रहने लगे। उनसे बचने के लिए वे लाहौर से निकलकर कोलम्बो, इटली होते हुए फांस पहुँच गए। फांस की राजधानी से वे जनवरी 1911 में भाई परमानन्द के साथ अमेरिका कैलिफोर्निया राज्य में जा पहुँचे। वहाँ अनेक क्रान्तिकारियों से मिलकर एक गदर पार्टी का गठन किया जिसके प्रधान सोहन सिंह भकना तथा मंत्री लाला हरदयाल बने। साथ ही पार्टी ने ''गदर'' नाम का एक पत्र निकाला जिससे क्रान्तिकारी विचार फैलाने में काफी सहयोग मिला। क्रान्तिकारी इस पत्र को सैनिक छावनियां तक भेजकर क्रान्ति की गति बड़ी तेज कर दी। सरकार की नजर पड़ने से हरदयाल जी को बार्लिन आना पड़ा। वहाँ भी उनको अनेकों क्रान्तिकारी मिल गये। लाला हरदयालजी के आने से उनमें नया जोश आ गया। यह समय प्रथम विश्वयुद्ध का समय था। भारत में गदर पार्टी के क्रान्तिकारी भारत को स्वतंत्र करवाने की योजना बना रहे थे, तब लाला हरदयाल ने जर्मनी से मिलकर भारत के क्रान्तिकारीयों के पास काफी हथियार भिजवाए, परन्तु वह योजना कृपाल सिंह गद्दार के कारण असफल हो गई तब हरदयाल का मन क्रान्तिकारी कार्यों से हटकर अध्यात्म और दर्शन की ओर मुड़ गया। वे जर्मनी से स्वीडेन होते हुए पुनः लंदन आ गए।

लाला हरदयाल एक सच्चे ईमानदार देशभक्त थे। उन्होंने कभी भी आर्थिक स्थिति सुधारने की कोशिश नहीं की और अर्थाभाव में ही वह महान आदर्श क्रान्तिकारी 4 मार्च 1939 को फिलडेल्फिया (अमेरिका) में मोक्षगामी बने। माना जाता है कि अंग्रेज गुप्तचर ने उन्हें जहर दे दिया था। ●

समाज निर्माण में नारी का उत्तरदायित्व

-वेदाचार्य डॉ रघुवीर वेदालंकार उपाचार्य,
रामजस कॉलेज

उक्त शीर्षक पर विचार करने के पूर्व हमें यह भी विचार करना होगा कि समाज का क्या अर्थ है, जिसके निर्माण में नारी के दायित्व की अपेक्षा की जाती है। व्यक्तियों के समुदाय को समाज कहते हैं। बड़े-बड़े उद्योगों ऊँचे-ऊँचे भवानों तथा अन्य नाना सुख साधानों का नाम समाज नहीं है। निश्चय ही नारी का क्षेत्र आज पहले की अपेक्षा पर्याप्त विस्तृत है जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आज पुरुषों के समान ही गतिशील है। आज वह ऊँचे पदों पर प्रतिष्ठित है। आज वह शिक्षिका है। आज वह डॉक्टर है, इंजीनीयर है, वैज्ञानिक है, उद्योगों की संचालिका है, गायिका हैं, विधानसभा में है, प्रधानमंत्री तथा राष्ट्रपति भी है। जीवन का कोई भी क्षेत्र आज ऐसा नहीं, जहाँ नारी की पहुंच न हो, या उसका योगदान न हो । इतना सब होते हुए भी नारी का मुख्य कर्त्तव्य उससे छूट गया। इस सब पचड़े में पड़कर या तो नारी को उसकी पूर्त्ति का अवकाश ही नहीं है, या फिर इस ओर उसका अपेक्षा भाव है। और वह दायित्व है-व्यक्ति निमार्ण का। यह कार्य अन्य सब की अपेक्षा अति महत्वपूर्ण है। इसी के कारण तो उसे माता का उच्च स्थान मिला था, जिसके विषय में कहा गया है-माता निर्माता भवति। मां ही उसके बच्चे की वास्तविक निर्मात्री है। इसीलिए तो माँ को बच्चे का प्रथम गुरु कहा गया है, ' मातृमान् पुरुषो वेद' का यही अर्थ है। वह जो संस्कार, जो शिक्षा बच्चे को दे सकती है, विश्व में कोई भी शिक्षाणालय तथा मानव नहीं दे सकता। प्रत्यक्ष रूप में देखने में तो यही आ रहा है कि आज नारी को अपने इस महान कर्त्तव्य का बोध ही नहीं है। आज वह धन एवं नौकरियों के पिछे भाग रही है, जैसे-कि पुरुष। कहने को कहा जाता है कि आज नारी पुरुष के साथ कंधा से कंधा मिलाकर चल रही है, किन्तु इस चलन में उसका स्वरूप बिगड़ गया। नारी, जो सुशीलता, त्याग, तपस्या, लज्जा, सौम्यता, नैतिकता एवं धर्म की प्रतिमूर्ति थी, उसका यह स्वरूप आज तिरोहित होता दिखलायी दे रहा है। इस प्रकार उसका अपना स्वरूप ही स्थिर नहीं रह पा रहा है तो वह मानव का निर्माण कैसे करेगी। इसके लिए उसके पास न समय है, न ही भावना।

इतिहास उठाकर देखें तो सम्पुष्ट है कि मानव के निर्माण में उनकी माताओं तथा पत्नियों ने कितनी भूमिका का निर्वाह किया है। स्वामी विवेकानन्द से जब अमेरिकन महिला ने यह पूछा कि आपने इस प्रकार की शिक्षा, ऐसे विचार किस शिक्षाणालय में प्राप्त किये हैं, मैं भी अपने बच्चों को वहाँ भेजना चाहती हूँ, तो विवेकानन्द उदास

होकर बोले-वह शिक्षाणालय अब टूट चुका है, क्योंकि वह मेरी माँ थी। महात्मा गांधी शिक्षा के लिए प्रथम बार विदेश जाने लगे तो उनकी धर्मपरायण माँ ने उनसे प्रतिज्ञा करायी कि वहाँ जाकर (1) शराब नहीं पिओगे (2)वेश्यागमन से दूर रहोगे। महात्मा गांधी ने दोनों ही पतित कार्यों से पृथक रहकर इस संबंध में अपनी माँ का उपकार माना है। आज, जब माँ ही शराब के नशे में धुत रहती है तो वह अपनी संतान को क्या शिक्षा देगी?छत्रपति शिवाजी को सिंहगढ़ के किले की ओर इंगित करके माता जीजा बाई ने कहा था-शिवा, यह किला तुम्हारे पूर्वजों का है, जो इस समय मुगलों के अधिकार में है। शिवाजी तभी प्रतिज्ञा करते हैं कि माँ! मैं यह किला पुनः लेकर रहूँगा। शिवाजी ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण भी की। थोड़ा और भूतकाल की ओर देंखे तो हमें विदूषी माता मदालसा की याद आती है, जिसने अपने बच्चों को बाल्यावस्थाओं में ही आध्यात्मिक ज्ञान दे दिया कि वे संसार से विरक्त हो गये, वह शिक्षा थी-

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि।
संसारमायापरिवार्जितोऽसि।।

हे पुत्र! तुम शुद्ध तथा ज्ञान स्वरूप हो। संसार माया से अलग हो। उनके पति राजा थे। राजा ने कहा भगवती! इस राज्य को कौन संभालेगा। तब मदालसा न एक पुत्र को क्षत्रित्व की शिक्षा देकर राज्य का अधिकारी भी बनाया। आज कितनी माताएँ बच्चों को इस प्रकार की उदात्त शिक्षा प्रदान करती हैं। उनके पास ऐसा करने के लिए समय ही कहां है। जब एक महिला प्रातः 8 बजे ही नौकरी रूपी दायित्व की पूर्ति हेतु निकलकर शाम को थकी-मांदी घर लौटेगी, तथा घर आकर उसे भोजन भी बनाना पड़ेगा तो उसके पास बच्चों की शिक्षा का समय एवं सामर्थ्य ही कहां रह जाएगा। नौकरी, धन तथा उच्च्व पद प्राप्ति की अपेक्षा संतान का निमार्ण बहुत कठिन है, जो कि आज मातृशक्ति ने छोड़ दिया है। नारी का दूसरा कर्त्तव्य था-अपने पति कुल की आन्तरिक गृहव्यवस्था को संभालना। इसके लिए उसे परिवार के प्रति अपने को समर्पित कर देना होता था। इस समर्पण भाव को दर्शाते हुए अर्थववेद मे कहा गया है कि एक नववधु पतिकुल में जाकर वहां पूर्णतः इस प्रकार विलीन हो जाए, जैसे कि एक नदी समुद्र में लीन हो जाती है। वह परिवार की अभिवृद्धि में, पारिवारिक जनों की उन्नति सहयोग दें, उसका यही धर्म है। यहाँ प्रगतिवाद प्रश्न करते हैं कि इस तरह तो नारी का क्षेत्र संकुचित हो जाएगा। उसकी क्षमताओं का क्या लाभ होगा। शिक्षा को प्राप्त करके भी एक नारी घर में संतान उत्पन्न करके उन्हें संभालती रहे, तथा परिवार की सेवा करती है, तो उसकी शिक्षा का क्या लाभ?जो लोग ऐसा प्रश्न करते हैं, वे नहीं

जानते कि शिक्षा का अर्थ क्या है?शिक्षा का अर्थ व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास करना है। उसे पशुत्त्व से मनुष्यत्त्व की ओर ले जाना है। शिक्षा का उद्देश्य नौकरी या धन कमाना नहीं है, अपितु जीवन निमार्ण करना है। आज यही तो भूल हो रही है कि शिक्षा को रोजगार से जोड़ा जा रहा है। प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति रोजगार चाहता है। वह इसे अपना अधिकार समझता है, तथा रोजगार के अभाव में सरकार से भत्ते की आशा करता है। सरकार भला इतने रोजगार, इतनी नौकरीयाँ कहां से लाएगी। शिक्षा इसलिए थी की, शिक्षित होकर, शिक्षा के द्वारा अपने मन तथा मस्तिष्क का पूर्ण विकास करके व्यक्ति किसी भी काम में लग जाए, वहीं सफल होगा। शिक्षा के बिना एक अच्छा व्यापारी, अच्छा दुकानदार, अच्छा राजनेता, अच्छा समाज सेवक नहीं बना जा सकता। यहां तक कि अशिक्षित मनुष्य तो खेती भी ठीक प्रकार से नहीं कर सकता। आजीविका के लिए कोई भी कार्य करने में कोई हानि नहीं है।

आज तो महिलाओं को नौकरी के बिना संतोष नहीं। यह गलत धारणा है। एक शिक्षित महिला ही घर को उत्तम रीति से चला सकती है। वही बच्चों को भी सुशिक्षा तथा सुसंस्कार प्रदान कर सकती है, अशिक्षित महिला नहीं। घर चलाने के लिए पाकविद्या का भी ज्ञान होना चाहिए। सामान्य रोग एवं उसके उपचार की जानकारी उसे होनी चाहिये। अर्थशास्त्र का ज्ञान भी आवश्यक है, तभी तो वह घर की अर्थव्यवस्था को रख सकेगी। पैसा कमाना तथा नौकरी करना ही नारी का धर्म नहीं है, अपितु घर को संभालना भी उसका दायित्व है। इसलिए उसका एक नाम गृहणि भी है। उसकी सेवा, त्याग, तपस्य, के बल पर ही तो पूरे परिवार की उन्नती हो रही है। वह इसमें सहयोगिनी है। इसलिए परिवार की उन्नति का श्रेयः उसे भी जाता है।

हम भामती नामक एक त्यागमयी नारी का उदाहरण सुनते हैं कि उसके पति वेदान्तशस्त्र के शांकर भाष्य पर टीका लिखने में इतने तल्लीन हो गये कि अपने गृहस्थधर्म का भी पालन न कर सके। भामती चुपचाप उनकी सेवा करती रही। ग्रंथ की समाप्ति पर उधर से ध्यान हटा तो भामती का त्याग, तपस्या, सहयोग देखकर उनके पति इतने अभिभूत हुए कि उस टीका का नाम ही भामति रख दिया। शायद आज ग्रंथ कर्त्ता का नाम कोई जाने न जाने, किन्तु भामति का नाम सब जानते हैं। वह अपने त्याग तथा सेवा से अमर हो गयी, क्योंकि उस ग्रंथ के लिखने में उसका भी सहयोग था। इतनी प्रसिद्धि तो उसे पृथक् से कोई ग्रंथ लिखकर भी नहीं मिलती। इसलिए यह भ्रम दिल से निकाल देना चाहिए कि परिवार की सेवा करके स्त्री का क्षेत्र संकुचित हो जाएगा, या उसकी शक्तियां निरर्थक हो जायेंगी। आजकल भी ऐसी माताएं मिल जायेंगी जो योग्य होते हुए भी स्वयं नौकरी न करके अपनी क्षमताओं को

उपयोग अपनी संतानों को सुयोग्य बनाने में करती है। यहाँ पर दिल्ली के रामजस कॉलेज के वनस्पति विभाग के पूर्व प्राध्यापक डॉ. एम. पी. जैन का उदाहरण दिया जा सकता है, जो गर्व से कहते हैं कि मैंने अपनी धर्मपत्नी को नौकरी इसलिए नहीं करायी कि इनके कारण ही हमारे तीनों लड़के डॉक्टर हैं। एक माता के लिए यह क्या कम उपलब्धि है?इस त्याग तपस्या से उसका यश अक्षुण्ण है। दूसरा उदाहरण भी इसी कॉलेज के दूसरे प्राध्यापक का है, जिनकी धर्मपत्नी भी किसी कॉलेज में प्राध्यापिका हैं। धन पर्याप्त है, किन्तु वे पश्चाताप के स्वर में स्वीकार करते हैं कि पत्नि को नौकरी कराना संतानों एवं स्वयं उनके भी हित में नहीं रहा।

वर्तमान काल की व्यापक एवं गम्भीर समस्या है कि आज बच्चे संस्कारविहीन एवं उच्छृंखल होते जा रहे हैं। यहां तक कि माता-पिता का सम्मान भी वे नहीं करते, जिस कारण वृद्धावस्थामें माता-पिता को परिवार से अलग भी कर दिया जाता है, तथा अन्य भी अनेक कष्ट भोगने पड़ते हैं। यह समस्या अशिक्षित लोगों में कम, शिक्षित समुदाय में विशेषकर शहरों में अधिक है। इसलिए भारत में भी वृद्धाश्रम की परम्परा जन्म लेती जा रही है। यह पाश्चत्य संस्कृति की ही देन है, तथा माता-पिता द्वारा संतानों को घर पर बाल्यावस्था में सुशिक्षा न दिये जाने का ही परिणाम है।

वैदिक संस्कृति में नारी को बहुत ऊँचा स्थान दिया गया है। उसे वेद में स्योना, सुशेवा, सुमंगली, प्रतारणी, कहा गया है। वह पूरे घर की सेवा करनेवाली, उसके कष्टों को दूर करने वाली तथा घर को पार लगाने वाली, उसकी स्वामिनी है। प्राचीन शास्त्रों में पत्नी पर कहीं भी धन कमाने का दयित्व नहीं डाला गया।

अतीत में महिलाओं के अधिकारों को सीमित करके उन पर अनेक प्रतिबंध लगा दिये गये। यह स्त्री जाति के साथ अन्याय था, अत्याचार था। महर्षि दयानन्द तथा अन्य समाजसुधारकों के प्रयासों से उस दशा में परिर्वतन आया तथा आज महिला पूर्णतः स्वतंत्र है। उसे पुरुषों के सामन ही सब अधिकार प्राप्त है, किन्तु प्रतीत होता है कि अनेक महिलाओं ने इस स्वतंत्रा का दुरुपयोग करके अपनी जीवनशैली को ही बदल डाला है। स्त्री, पुरुष की अपेक्षा अधिक शालीन, सात्विक तथा धर्मपरायणा होती थी। पुरुषों के दोष उनमें नहीं होते थे, किन्तु आज के वातावरण में, आज भौतिकवाद ने, नौकरीवाद ने वे सभी दोष महिलाओं में उत्पन कर दिये, जो कि उनको पतन की ओर धकेल रहे हैं। किसी ऊँचे पद को प्राप्त करके आज महिला भी रिश्वत लेती है, भष्टाचार के अनुचित तरीके अपनाती है। वह अपने पुरुष मित्रों के साथ बैठकर शराब पीती है। सिगरेट पीना तो उनके लिए आम बात हो गयी है। अनेक घोटालों में किसी पद पर प्रतिष्ठा

सुशिक्षित महिला का भी सहयोग रहता है। अनेक महिलाओं जेब काटते हुए भी पकड़ी गयी है। दिल्ली पुलीस की नारकोटिक्स शाखा के उपायुक्त श्री डी.एल. कश्यप के अनुसार उनकी शाखा 1999 से अब तक 32 महिलाओं को मादक द्रव्यों के मामलों में गिरफ्तार कर चुकी है। एक पुलिस अधिकारी के अनुसार 1985 में मादक द्रव्य निरोधक कानून बनने के उपरान्त अफीम-गांजा बेचने वाले कई आपरेटरों ने ज्यादा मुनाफा देने वाले स्मैक जैसे पदार्थों पर अपना ध्यान केन्द्रित कर दिया। 'नवभारत टाइम्स' का यह निष्कर्ष चौंका देने वाला है कि दिल्ली में स्मैक, चरस, हशीश, गांजा आदि नशे की दवाओं की आपूर्ती में आधी संख्या महिलाओं की हैं। इस व्यवसाय में वे स्वयं को स्थापित कर चुकी है। क्या यही समाज-निमार्ण है, जिससे महिलाएं अपना योगदान देकर एवं राष्ट्र पतन के गर्त में धकेल रही हैं।

न केवल इतना ही, अपितु पाश्चात्य संस्कृति आज नारी पर, विशेषकर उच्चशिक्षा प्राप्त युवतियों इस रूप में सवार है कि आज अपनी सभी मर्यादाओं का अतिक्रमण कर दिया है। आज उसकी मान्यताएं बदल गयी हैं। बिना विवाह ही पुरुष के साथ रहने, तथा सन्तानोत्पत्ति को आज प्रगतिशील महिलाएं अपना रही हैं। आज शिक्षित लड़कियां भूख-प्यास के समान ही काम को भी केवल शारीरिक आवश्यकता बतलाकर किसी भी पुरुष के साथ यौन संबंध स्थापित करने में परहेज नहीं करती। यह स्त्री जाति के पतन की पराकाष्ठा है। इससे तो समाज अध:पतन की ओर ही जाएगा। वेद में कहा गया है-

'मा ते कशप्लकौहशन् सन्तरा पादकौ हर' अर्थात् स्त्री को पैर के टखने

तक अपने शरीर को ढक कर रखन चाहिए, किन्तु आज शिक्षित नारियों में, विशेष कर अभिनेत्रियों में तो नग्न प्रदर्शन की होड़ लगी है। जो भी जितना भी अधिक नग्न प्रदर्शन कर सके, वह उतनी ही सफल अभिनेत्री है। जब वह स्वयं ही नग्न होने में गौरव अनुभव कर रही है तो अखबारों तथा विज्ञापनों से स्त्री के नग्न या अर्धनग्न चित्रों पर उसे क्या आपत्ति हो सकती है। यदि इसी को सामाजिक उन्नति तथा स्वतंत्रता कहते हैं तो पतन का मार्ग और क्या होगा?

समाज के निमार्ण में महिलाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका से इंकार नहीं किया जा सकता। सरकारी सेवा में किरण वेदी जैसी महिला पुलिस अफसर एक कीर्तिमान स्थापित करती है तो सामाजिक क्षेत्र में मेधा पाटेकर जैसी देवियां भी कार्य कर रही है। इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों में भी महिलाएं सक्रिय हैं। शराबबंदी मे भी महिलाओं ने प्रमुख भूमिका निभाई है, किन्तु प्रश्न है कि ऐसी महिलाएं कितनी हैं?बहुत कम। इसके विपरीत

उन महिलाओं की संख्या पर्याप्त है जिन्होंने भोगवाद में अपने आपको झोक दिया। जो केवल पैसे की मशीन बनकररह गयी है। जिनके पास उनके बच्चों के लिए भी समय नहीं है। जिन्होंने अपने चरित्र, नैतिकता, धर्म, संस्कृति को दूर फेंक कर वर्त्तमान पाश्चत्य शिक्षा, सभ्यता एवं संस्कृति को ओढ़ लिया है। समझ में नहीं आता कि ऐसी महिलाओं से समाज एवं राष्ट्र का क्या लाभ होगा?इस दुरावस्था को देखते हुए तो महात्मा गांधी का वह कथन याद आता है कि उनके अनुसार महिलाओं का क्षेत्र घर के अंदर है, बाहर नहीं। घर तथा बाहर दो बराबर के पहलू हैं। प्राचीन परम्परा में सोच समझ कर ही नारी को घर का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र सौंप दिया गया था। आज घर से बाहर आकर उसका अपना स्वरूप ही बिगड़ गया तो वह समाज के निमार्ण में क्या योगदान देगी?हे जन्मदात्री जननी! हे लालनकर्त्री ललना! हे निमार्णकर्त्री मात:?हे नर की अर्धांगिनी! हे सुखदायनी सुशेला ! हे घर की आधार गृहिणी?हे महत्त्व प्रदात्री महिला! ये सब दुकान कार्यालय, व्यापार, होटल एजेन्सीयाँ रेल, वायुयान, क्लब तो तुम्हारे बिना भी चल जाएंगे, किन्तु तुम्हारे बिना संतान का निर्माण नहीं हो सकता। तुम्हारे, त्याग, सेवा, प्रयत्न बिना घर में सुख-शान्ति नहीं हो सकती। बाह्य योगदान की अपेक्षा यह योगदान तुम्हें गौरव प्रदान करेगा। हां यदि तुम्हें सामाजिक प्रतिष्ठा ही प्राप्त करनी है तो ऐस भी अनेक कार्य हैं, जिनसे समाज का सुधार भी होगा तथा तुम्हें समाज में गौरव पूर्ण स्थान भी मिलेगा। आज दहेज का दानव आकाश में बादल की तरह समाज में सर्वत्र व्याप्त होता जा रहा है। इस दानव के नीचे जाने कितनी अबलाएं दब मकर छटपटा कर प्राण त्याग रही हैं, हे आज की प्रतिशील नारी! क्या तुम्हें उनकी चीख पुकार सुनायी नहीं देती?क्या उनके शवों की ओर तुम्हारा ध्यान नहीं जाता?क्या वे तुम्हारी ही सजातीय नहीं हैं?मेरे विचार से नारी जाति के जागरूक हुए बिना इस दानव का अन्त नहीं हो सकता। घर में महिलाएं ही सोचती हैं कि बहू अच्छा दहेज लेकर आए। कहीं कहीं तो स्वयं कन्या को भी इसकी भूख रहती है। यदि विवाह योग्य लड़कियां तथा उनकी माताएं सोच लें कि दहेज के लेभियों से विवाह नहीं कराएंगी तो यह कुप्रथा आसानी से रुक जाएगी। इसके अतिरिक्त हे पूज्य नारी! तू शरब, व्यभिचार तथा भ्रष्टाचार के विरुद्ध व्यापक आन्दोलन चला सकती है। सौन्दर्य प्रतियोगीता के बहाने से तुम्हारे जिस नग्न स्वरूप का प्रदर्शन किया जा रहा है, क्या तुम्हारी गरिमा के अनुरूप हैं?घर के सदस्यों को ऐसा न करने के लिए विवश कर सकती है। इस प्रकार सामाजिक सुधार के अनेक कार्य हैं, जो नारी को प्रतिष्ठा भी दिलायेंगे। यह तभी होगा जब आज पुरुषों की होड़ में तेजी से पतन की ओर भागती हुयी नारी अपने कदमों को वहां से रोक ले। ●

वेद का भगः ही फाइनेंस मंत्री

-डॉ अशोक आर्य, कोशाम्बी

वेद में सब समस्याओं का बहुत ही सुंदर समाधान किया गया है। जहाँ तक राजनीति का प्रश्न है, वेद में इस पर भी भरपूर विचार है। राजा के गुणों तथा उसकी नियुक्ति व सभा समितियां बनाने के पश्चात् मंत्रियों की नियुक्ति पर भी वेद ने उत्तम उपदेश दिए हैं। जब इन उपदेशों के आधार पर मंत्री मंडल का निर्माण होता है तो राज्य की सुख समृद्धि में निरंतर वृद्धि होती है तथा राज्य निरंतर उन्नति के पथ पर आगे और आगे बढ़ता ही चला जाता है। हम जानते हैं कि प्रत्येक राजा अपने राज्य के उत्तम संचालन के लिए अपनी अर्थ व्यवस्था को उत्त्मोत्तम बनाता है और इस के लिए एक अर्थ मंत्री, एक फाइनैंस मिनिस्टर अथवा एक भगः मंत्री की नियुक्ति करता है। इस संबंध में वेद का स्पष्ट संकेत हमें इस मंत्र में मिलता है:-

भाग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः।

भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र त्रीभिर्त्रीवन्तः स्याम।।ऋगवेद 7.41.3।।

यह मंत्र एक प्रकार से भजनीय मंत्र है। इस के भग के भजनीय परमेश्वर इस अर्थ के अतिरिक्त अर्थ मंत्री अथवा अर्थ लेने वाले मंत्री के रूप में अच्छी संगती बनती है। बिना अर्थ के किसी भी राज्य की कोई भी राजा ठीक से व्यवस्था नहीं कर सकता। इस लिए प्रत्येक राज्य के लिए अर्थ व्यवस्था को पटरी पर लाने और प्रजा कल्याण करने के लिए आर्थिक सम्पन्नता का होना आवश्यक होता है। इस सम्पन्नता को लाने के लिए देश में प्राप्त संसाधन को जहाँ दुहना होता है इसलिए राजा अपने वहां व्यवस्थित अर्थ प्रगति भी आवश्यक होती है। इस लिए राजा अपने राज्य की सुव्यवस्थित अर्थ व्यवस्था के लिए अर्थ मंत्री की नियुक्ति करता है। आज के युग में इस मंत्रालय का नाम फाइनेंस मंत्रालय हो गया है तथा इस के मंत्री को फाइनेंस मंत्री कहते हैं, जबकि वेद में इसे भगः कहा गया है।

वेद में जहां अर्थ मंत्री को भग के नाम से पुकारा है, इसे भग का नाम दिया गया है। वेद ने इस भगः मंत्री को सत्यराधः भी का है। सत्याराधः नाम के इस विशेषण का प्रयोग भगः मंत्री के लिए अत्यंत व विशेष महत्त्व रखता है। इस का वेद ने बहुत ही सुंदर अर्थ देते हुए कहा है कि यह जो भग नाम का मंत्री है, सदा सत्याचरण करते हुए सत्य साधनों से, सत्य वचनों से ही सब कार्यों को सिद्ध करने वाला, सब कार्यों को पूर्ण करने वाला हो। इतना ही नहीं यह भगः मंत्री राज्य की सुख सुविधाओं को जुटाने के लिए जो धन अर्जित करता है, वह धन भी सत्य से अर्जित हो तथा सत्य से अर्जित इस धन से वह पूर्णतया संपन्न हो। राज्य के कोष सुमार्ग से प्राप्त धन से सदा भरे रहें।

मंत्र कहता है कि राज्य का सब धन सत्य

शेष 38 पर

सृष्टि का संचालक निराकार परमपिता परमात्मा है

जैसे मकड़ी किसी बाहर के पदार्थों को न लेकर अपने अंदर विद्यमान पदार्थ से ही जाला बनाती है और उसके बाद उस जाले को अपने अंदर ही ले लेती है उसी प्रकार सर्वव्यापक परमात्मा अपने अंदर स्थित प्रकृति से जगत् का सृजन करता है और अपने अंदर ही उस को प्रलय करके स्थित कर लेता है और जैसे पृथ्वी में बीज डालने पर अपना-अपना वृक्ष आता है वैसे ही परमात्मा की सत्ता में जीवों के अपने अपने कर्म शरीरों का निमार्ण करते हैं और जैसे शरीर के अंदर जीवात्मा के स्थित रहने पर काटे हुए नाखून या बाल स्वयं बढ़ जाते हैं क्षत-घाव स्वयं भर जाता है परन्तु यदि जीवात्मा शरीर से निकल जावे तो काटे बाल नहीं उगेंगे काटे नख नहीं बढ़ेंगे और न घाव ही पूरा भरेगा। जैसे जीवात्मा की शरीर के अंदर सत्ता रहते हुए सब व्यापार होते रहते हैं वैसे ही समस्त ब्रह्माण्ड में महान सत्ता परमपिता परमात्मा के रहने से सृष्टि और प्रलय होते रहते हैं अत: वह चर-अचर सभी का संचालक निराकार परमपिता परमात्मा का ही है।

सृष्टि को देखने से उस में सर्वत्र नियम पाया जाता है सूर्य चंन्द्र आदि की गतियाँ कितनी नियमपूर्वक हैं। प्राणियों के शरीर की रचना कितनी सुव्यवस्थित है। क्या यह सब कुछ किसी नियामक के बिना हो सकता है?यह रचना आदि का नियामक गुण ईश्वर को जतलानेवाला हैं उसकी सत्ता के प्रकाशक हैं। जब किसी वस्तु का साक्षात्कार करते हैं तब उस के गुणों को देखते हैं गुणों के देखने से गुणी का ही साक्षात्कार समझा जाता है। जैसे जब हम किसी एक पुष्प को देखते हैं यह एक प्रश्न है उस समय हम उस पुष्प के रंग को देखते हैं आकार को देखते हैं इत्यादि। ये सब गुण ही तो हैं इन गुणों को देखने से ही पुष्प का साक्षात्कार समझा जाता है अर्थात् रचना को देखकर रचनाकार का ज्ञान हो जाता है कि वह साकार है अथवा निराकार है वैसे ही हम प्रभु की रचना को देखकर ही प्रभु का ज्ञान करते हैं इसके अतिरिक्त जिस प्रकार सूर्य की किरणें संसार के समस्त पदार्थों का प्रकाश करती हैं वैसे ही किरण के समान वेद की ऋचाएं प्रभु को प्रकाशित करती हैं नास्तिक लोग भी यदि सच्चाई के साथ बैठकर हठ धर्मिता छोड़कर बुद्धिपूर्वक यदि विचार करें तो उन्हें ईश्वर का निश्चय हो जाएगा।

परमात्मा को जान लेने पर परमात्मा के साक्षात् हो जाने पर संसार का कोई परमाणु भी ऐसा नहीं होता जिस को योगी न जान लेता हो। इसी प्रकार के समाधिस्थ लोगों ने समस्त सांसारिक विद्याओं के भी अविष्कार किये हैं अत: उनके अविष्कारों, अनुसंधानों, ज्ञानों में भ्रान्ति नहीं हो सकती। अन्य लोग जो वर्तमान विज्ञान के आधार पर अनुसंधान करते हैं उनके सिद्धान्त बदलते रहते हैं। क्योंकि वर्तमान विज्ञान में यह बात निर्विाद है कि उस के अंदर बहुत बड़ा भाग अनुमान का होता है। यंत्रों द्वारा प्रत्येक बात का साक्षात्कार नहीं होता। कुछ को यंत्र से जानते हैं शेष को अनुमान से। परन्तु प्राचीन अनुसंधानकर्त्ता ऋषियों का सब कुछ साक्षात्कृत होता था-अत: जितने को वह जानते थे निर्भ्रन्त जानते थे-जिस को नहीं जानते थे उसको नहीं जानते थे क्योंकि जीव सर्वज्ञ (सब कुछ जाननेवाला) कभी भी नहीं हो सकता।

मनुष्य शरीर के बाहर और भीतर की विचित्र कलाकारी

-डॉ गंगा शरण

इस सृष्टि में प्रभु की प्रत्येक रचना ज्ञान सहित है। शरीर के प्रत्यक भाग में सुडौलपन पाया जाता है। हाथ के अंगूठे की मोटाई से दुगनी कलाई की मोटाई होती है और कलाई की मोटाई से दुगनी गले की मोटाई होती है। इसी प्राकार सारी इन्द्रियाँ (आँख, नाक, कान, जिह्वा, त्वचा आदि) और सब स्थान एक विशेष नाप के अनुपात में बनाए गए हैं। प्राणी भी असंख्यात है योनियाँ भी असंख्य। क्या विचित्रता है कि एक रूप दूसरे रूप से नहीं मिलता। जब से सृष्टि रची है, 1 अरब 96 करोड़ 8 लाख 53 हजार 112 वर्ष हो गए, परन्तु आज तक एक भी सूरत दूसरे से नहीं मिली। प्रभु कैसे किस बुद्धि से बनाते हैं?

मनुष्य जब किशोरावस्था को पार होता है तो प्रकृत्ति के प्रति जिज्ञासावान होता है। उसके मन में यह प्रश्न उठते हैं कि मानव का शरीर गर्भ में कैस बना? प्राण कहाँ से आए?शरीर में प्राण ने कैसे प्रवेश किया?शरीर इन्द्रियों की रचना कैसे हुई?पर एक बहुत बड़ा प्रश्न यह है कि कैसे विश्व व्यापक उर्जा शरीर के अंदर आकर बंद हो गई और विभाजित होकर शरीर के हर भार में पहुँच गई?प्राण कैसे शरीर को छोड़कर चले जाते हैं? ऐसा लगता है कि कोई निर्माण करने वाली शक्ति है जो प्रत्येक अंग प्रत्यंग बना रही है। वेद शास्त्र इसका ज्ञान देने का प्रयत्न करते हैं पर मनुष्य की कमजोरी है वह हर वस्तु को अपनी आँखों से देखना चाहता है। ईश्वर की रचना को इन आँखों से देखा नहीं जा सकता उसकी रचना वह ही जाने।

प्रश्नोपनिषद् के ऋषि कुछ हद तक जिज्ञासा शान्त करने का प्रयत्न करते हैं। आश्वलायन ऋषि के पुत्र कौशल्य से पिप्पलाद ऋषि से उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर जानने की जिज्ञासा व्यक्त की। ऋषि ने बताया कि द्रव्य पदार्थ और उर्जा प्रजापति परमेश्वर के भीतर ही थी। दोनों पदार्थों नृत्य करते करते एक दूसरे से मिल गए तो प्राण शक्ति प्रसूत हो गई। वास्तव में प्राण आत्मा का प्रतिविम्ब ही है। जैसे जल का साधन हटा लिया जाए तो प्रतिविम्ब स्वयमेव ही समाप्त हो जाता है। क्योंकि बर्तन में पड़े हुए जल ने प्रतिविम्ब ही नहीं बनाया या शीशा हटा लेने से प्रतिविम्ब ही समाप्त हो जाता है। शरीर के अंदर की समस्त संरचना का निर्माण करता तो परमात्मा ही है। जो आत्मा के लिए बनाता हैऔर आत्मा शारीरिक ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां की सहायता से अपने लिए जीवनोपयोगी साधनोपसाधन निर्माण करता है। अहं व्यक्ति के विचारों से बनता है। जैसे विचार होंगे वैसे शरीर बनेगा, अहं भी आत्मा से प्रसूत हुआ है। अहं की स्वतंत्रता सत्ता नहीं है। बाहर से शरीर का भरण-पोषण इन्द्रियाँ करती है। शरीर में उर्जा और प्राणों के खेल से बुद्धि का विकास होता है और उसमें क्षमता व कुशलता आती है।

इन्द्रियों से मनुष्य किसी वस्तु को देखकर उसे सूँघता है, उसकी प्रशंसा सुनता है, उसका स्वाद क्या है?स्पर्श करने से कोमल और कठोर का भेद जानता है, उसका व्यवहार कैसे किया जा सकता है

और उसका लाभ क्या होगा?ये जानकारी मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास करती है। वास्तव में चेतनता ही विशुद्ध जीवन है। भौतिक विज्ञान के पास उत्तर नहीं है। हमें इससे आगे जाना होगा। प्राणों की शक्ति को वही समझ सकता है जो इस संसार से दूर हटकर वैराग्य की भावना से काम करे। मन भी आत्मा के लिए उत्पन्न हुआ है। हर व्यक्ति की जीवन चिंगारी विशुद्ध जीवन केन्द्र से उठती है। उदाहरण के लिए स्त्री पुरुष के मिलाप से जीवन चिंगारी नहीं जलती। उदाहरण देखिए स्त्री पृथ्वी है पुरुष आकाश है। आकाश उर्जा देता है तो धरती पर फूल पैदा होते हैं यदि धरती में उर्वर शक्ति न हो तो जीवन चिंगारी नहीं जलेगी या इसके विपरीत पौधे को घर के अंदर बंद कर दिया जाय तो पौधा फूल नहीं दे सकता। जीवन चिंगारी तभी जलती है जब मन सभी कार्यो से हटकर अपनी इच्छा शक्ति, कामनाएँ और संकल्प शक्ति को इस प्रकार अभिव्यक्ति करें कि प्राण अपने केन्द्र में सक्रिय और उत्तेजित हो जाएं।

अब प्रश्न है कि परमेश्वर की व्यवस्था से प्राण कैसे विभाजित होकर शरीर के हर भाग में पहुँचता जाता है?यह व्यवस्था समझने के लिए अपने देश की सरकारी व्यवस्था को देखिए। राष्ट्रपति तो सब जगह जाती नहीं और न ही प्रधानमंत्री, पर उस व्यवस्था के लिए सभी नियम देश की चारों दिशाओं के सभी राज्यों में पहुँच जाते हैं। गवर्नर और मुख्य मंत्री हर आई.ए.एस. ऑफिसर की ड्यूटी लगा देता है और उसे निश्चित क्षेत्र दे दिया जाता है ठीक वैसे ही प्राणवायु राष्ट्रपति की तरह केन्द्र सरकार की गतिविधियाँ देखता है बुद्धि, कान, आँखें, नाक, जिह्वा और त्वचा की स्वयं देख रेख करताा है। अपानवायु, भीतर का कूड़ा कचरा बाहर फेंकता रहता है। यह मुख्य हैं इन दोनों के बिगड़ने से सब कुछ बिगड़ जाता है। उदानवायु स्वयं तंत्रियों को शक्ति देती है। व्यान वायु खाया पिया हजम करने में सहायता करती है और समान वायु पचे हुए खाने को सभी अंगो में पहुँचा देती है जैसे टेलीफोन की तारें संदेश देती रहती है। वैसे ही हमारी नसें काम करती हैं। शरीर के किसी भाग में चींटी काट जाए मनुष्य को एक क्षण में खबर मिल जाती है आप को कोई नंबर घुमाना नहीं पड़ता, शीघ्र ही सब व्यवस्था हो जाती है। जब तक सृष्टि चलती रहती है मानव का आवागमन चलता रहता है चलता ही रहेगा।

प्रभु ने धरती बनाई, परन्तु उसके खण्ड-खण्ड का प्रभाव भिन्न है। कहीं सोना, कहीं चांदी, कहीं लोहा, कहीं पारा, कहीं सोडा, कहीं खार होती है। कोई बर्फीली की, कोई अन्न की, कोई बाग की, कोई चाय-काफी की, कोई पथरीली, कोई मैदानी है, असंख्य (खानें) हैं, कोई लवण (नून), कोई नीलम, कोई हीरे पैदा करती है, कहीं नारियल उगते हैं और कहीं आम। कहीं जल है तो उनका प्रभाव भी अलग-अलग। कोई भारी, कोई हल्का, कोई कड़वा, काई खारा (नमक जैसा) कोई मीठा, कोई तेलीया, किसी से अतिसार (दस्त) किसी से मलारोध (कब्ज), किसी से ज्वर, किसी से स्वास्थ्य-लाभ होता है। रंग बनाए तो नाम एक, किन्तु रूप एक समान नहीं। पीले रंग हो ही लो। आम, संतरा, नींबू, हल्दी, केसर, सोना, सूर्यमुखी, गेंदा, अग्नि, सरसों, के फूल सभी पीले हैं किन्तु एक से

दूसरा नहीं मिलेगा यही दशा दूसरे रंगो की है स्वाद बनाए तो सब समान नहीं है। खटाई को देखो! दही, लस्सी, कुल्फा, आम, नींबू, जामुन, आँवला, आलूबुखारा, किसी का स्वाद भी दूसरे से नहीं मिलता। करेला कड़वा, बीज फीका, नीम कड़वा, नीम्बोली मीठी, नींबू खट्टा, बीज कड़वा, पीलू मिठे, बीज कड़वा। संतरे की बनावट तथा उत्पति देखो। बीज श्वेत, डंडी मटियाली, पत्ते हरे, फूल श्वेत, और मनोहर सुगंधवाले, छिलका पीला, फॉके गुलाबी, एक-एक संतरे में बारह डालियाँ और एक-एक फॉके में तीन-तीन बीज, एक-एक संतरे में 36-36 बीज। अनार की गुँधावट देखो, कैसी बंधी हुई है। एक दाने को निकाल लो तो बड़े से बड़ा कारीगर वैज्ञानिक भी उसे फिर वहाँ नहीं जमा सकता। गुलाब के फूल में सुगंधि, परन्तु पत्ते, डंडी और बीज में कुछ भी नहीं। माता के गर्भ में बालक कैसे रहता है और कैसे बढ़ता है?कैसे उसका पालन-पोषण होता है?फिर किस प्रकार गर्भ-गुफा से इतना बड़ा बालक बाहर निकल आता है?मकड़ी अपने अंदर से कैसा महीन तार निकालकर किस प्रकार जाल बनाती है। शरीर की आंतरिक लीला भी प्रभु ने कैसी विचित्र रची है। मनुष्य एक पदार्थ को भी अनेक नहीं बना सकता, किन्तु प्रभु की लीला देखो! मनुष्य अन्न खाना चाहता है तो अंदर जाकर उस अन्न का क्या-क्या बन जाता है फिर रंग भिन्न-भिन्न। हड्डी, पीप, मांस, रूधिर, रस, मज्जा, चरबी, खाल, नख (नाखून), बाल, वीर्य, थूक, खखार आदि।

कार्यालय फौडरी:-अमाशय (मेदा) अपने संबंधित यंत्रों सहित एक ऐसा विचित्र कार्यालय है जिसमें भाँति-भाँति की धातें (धातुएँ) ढलती हैं। भट्टी में अग्नि प्रदीप्त करने के लिए धौकनी की भी आवश्यकता हैं। हमारे दोनों फेफड़ों दो ऐसी स्थाई धौकनियाँ है जो दिन-रात अग्नि प्रदीत्प करने के लिए निरन्तर फूक लगाने में व्यस्त रहती है।

मलपात्र और मसाना-यह दो नालें हैं जिनसे ढली हुई धातुओं का मैल तथा इंजन का अनावश्य जल एकत्रित रहता है, किन्तु इसमें ऐसा जल और मैल (मल) का निकास कार्यालय के स्वामी की स्वीकृति और आज्ञा पर निर्भर करता है। इसमें भी प्रभु का एक रहस्य है यदि मनुष्य से मल मूत्र का निकास मनुष्य की इच्छा के आधीन न होता, तो उसका शरीर, वस्त्र, बिछौना, लेटने बैठने का स्थान सदैव गंदा, दुर्गन्धियुक्त और घिनौना रहता, बड़े-बड़े विशाल भवनों में मलस्थान (पाखाना) प्रायः रहने के कमरों से दूर एक कोने में होता है और समय-समय पर साफ होता है। फिनाईल आदि से उसकी दुर्गधं दूर हो जाती है, वर्षा ऋतु में फिर भी दुर्गन्ध रहती है, किन्तु मनुष्य शरीर में मल सदैव बना रहता है, फिर भी न तो शरीर के स्वामी को ही और न ही किसी आसपास वाले को ही उसे इस आन्तिरिक मल की दुगंध आती है। इस प्रयोजन से प्रभु ने मोमी वस्त्र की एक 35 फीट लम्बी थैली बना रखी है जिसमें बड़ी दक्षता और चतुराई से इस मल को इस प्रकार लपेट रखा है वर्षों पड़ा रहे, परन्तु दुर्गन्ध बाहर न निकलने पावे। फिर आश्चर्य यह है कि एक फुट वर्गास्थान (अमाशय) में यह 35 फीट लम्बी थैली ऐसी चतुराई से रखी है कि न बल ही पड़े और न पेंच ही, और

रखी भी जाय लपेटकर। माँसाहारी पशुओं के अमाशय में प्राय: न केवल कच्चा माँस ही वरण पत्थर जैसी कठोर हड्डियाँ भी इस अमाशय की अग्नि में गलकर पानी सी पतली हो जाती है, किन्तु यह अमाशय जो एक नरम सूक्ष्म माँस से बना हुआ है उस पर पत्थरों के गलने-वाली इस अग्नि का रत्तीभर भी भाव नहीं पड़ता।

मूर्ति बनाने का कार्यालय-इस कार्यालय में मिला हुआ ही एक दूसर कार्यालय भी है जहाँ पत्थर काटने और मूर्ती बनाने का काम होता है। इस कार्यालय में पौने दो इंच लम्बे कमरे में, जिसे बच्चादानी कहते हैं, बिना किसी कारीगर, यंत्र या शोरो-गुल के चुपचाप ही मनुष्यों तथा पशुओं के बच्चों की नाना रूप तथा आकृति की मूर्तियां बनती हैं। संसार में कोई भी प्राणी श्वास लिए बिना जीवित ताराघर-इसी शरीर में एक बड़ा शानदार तारघर हैं जिसमें सैकड़ों बिजली के तार लगे हुए हैं, जहाँ रात-दिन-तार-समाचार बाहर से पहुँचते रहते हैं। उनके पाने के लिए पाँच तार बाबू और एक हैडक्र्लक (मुख्याधिकारी) है सबकी पाई खबरे कार्यालय के स्वामी को पहुँचा देता है। यह तारघर शरीर का वह भाग है जिसे खोपड़ी कहते हैं शरीर में सैकड़ों पट्टे बिजली की तारे हैं।

पाँच तार बाबू पाँच ज्ञानेन्द्रियां है और मस्तिष्क (बुद्धि) उनका मुख्याधिकारी है।

फोटे कैमरे-उनके साथ बड़ा बढ़िया फोटोग्राफी (छाया चित्र) का कार्यालय है जिसमें दो कैमरे (चित्र ग्रहण के यंत्र) उनके शीशे का घेरा 1/8 इंच है और उसका व्यास (Diameter) 1/24 इंच, किन्तु इतने छोटे शीशों द्वारा भी बड़े-बड़े दरयाओं, पहाड़ों, नगरों, वरन देश-देशान्तरों के चित्र बड़ी सुंदरता और सफाई के साथ खींचे जाते हैं और एक 6 इंच वर्ग-कैमरे मे 'एकचित्र कर दिये जाते हैं। फोटोग्राफी का कार्यालय भी मस्तिष्क का ही एक भाग है। इसमें दो कैमरे दोनों आँखें हैं दो शीशे हैं आँखों की दोनों पुतलीयाँ। आँखो के ढेलों को बाहरी चोट से सुरक्षित रखने के लिए उस सर्वज्ञ प्यारे प्रभु ने उन्हें दो गहरे गढ़ों में रखा है, गर्द-धूल से बचने के लिए उनके आगे पलकों की चिकें लटका दी हैं। और छेदों अर्थात् पपोटों के किवाड़ तथा परदे भी बना दिये है। जिससे कार्यालय बंद हो जाने पर उन्हें नीचे गिराकर द्वारा सर्वथा बंद कर दिया जाए। टेलीफोन और फोनोग्राफी-इसी जगह एक और भवन खड़ा है जिसके दोनों ओर दो बड़े द्वार हैं। उसके एक भाग में टेलीफोन (मुख्य द्वारा फासले पर बातचीत करने का यंत्र) का सिलसिला बड़े विस्तृत रूप से स्थिर है और दूसरे में फोनोग्राफी का काम जारी है। इसमें दो ही तवें (प्लेटें) सैकड़ों वर्षों तक सुई बदले बिना ही बड़ी सुंदरता से काम देते रहते हैं। यह भवन भी खोपड़ी में ही जिसके द्वार दो कान है और कानों के अंदरवाले परदे दो तवे हैं।

गायनाल-इससे मिला हुआ एक और कार्यालय है जहाँ नाना प्रकार के वाद्य यंत्र (बाजे)-सारंगी, सितार, मृदंगा, तबला, ताऊस, वीणा, बाँसुरी और हारमोनियम बनते और बजते-बजाते रहते हैं। विचित्र बात यह है कि इस कार्यालय में बने हुए सब बाजे एक ही तार से बजते

है और केवल एक ही चाबी सैकड़ों स्वर निकालने का काम देती है यह कार्यालय शरीर के उस भाग में है जिसे तालु, जिह्वा, कंठ(हलक) कहते हैं और वह एक मात्र वह तार है जिसे धमनी (शिरा, शाहरंग) कहते हैं, और वह एक ही चाबी जिह्वा है।

पिसाई का कार्यालय-इस शरीर में एक आटा पीसने की मशीन (चक्की) लगी हुई है। चक्की चलते समय ओखला मे हाथ डालकर माल ऊपर-नीचे करने के काम में पर एक चतुर अनुभवी मजदूर लगा हुआ है जो चक्की के धमाधम चलते समय ओखला में बड़ी सफाई के साथ माला फेरता रहता है, किन्तु क्या मजाल जो चक्की हाथ को छू जाय! यह मशीन तालु मुख दोनों होठों व दाँत है और मजदूर जिह्वा है जो ग्रास चबाते समय ग्रास को दाँतों तले नीचे-ऊपर करते रहने में ही लगी रहती है।

नहर तथा सिचांई-विभाग-इनके अतिरिक्त यहाँ खेती-क्यारी का काम भी होता है, जिसके लिए नहर का एक बड़ा महकमा जारी है, इसमें छोटी-छोटी सैकड़ों नहरें बहती हैं और देश के प्रत्येक भाग का सिंचन करती है, अर्थात् रक्त से भरी हुई सहस्त्रों नसे और नाड़ियाँ, असंख्य रोम अर्थात् शरीर पर के बाल, मानो नाना प्रकार की खेतियाँ हैं।

निर्माण विभाग-यह भाग रात-दिन बनाव-बिगाड़ में लगा रहता है। सैकड़ों चोट-फोट जो बाहर शरीर पर लगती रहती है, वे बिना किसी चिकित्सा से अपने-आप स्वाभाविक रूप से ठीक होते रहते हैं।

चिकित्सालय-इनमें चिकित्सा तथा चीरफाड़ का काम भी निरन्तर होता रहता है। सैकड़ों आंतरिक रोग अपने-आप ही प्रकृतिक रूप से दूर होते रहतें है और कई आन्तरिक क्षत (जख्म) बिना किसी चिकित्सा के अंदर ही अंदर स्वयमेव भरते हैं।

घंटाघर-इस महान् संसार और इसके अंदर नाना प्रकार के असंख्य कार्यालयों के प्रबंध को नियमपूर्वक रखने के लिए इसमें एक स्वभावतः घंटाघर भी है, जिसकी मशीनरी बड़ी नियमानुसार चौबीसों घंटे टिक-टिक की ध्वनि करती है और लटकल (पैंडुलम) सदैव स्वभातः हिलता रहता है। यह घंटाघर दिल और उसका नस-नाड़ि प्रबंध है इसकी सुई है नाड़ी (नब्ज) तथा उसकी धड़कन का शब्द टिक-टिक है। लटकन हृदय-यंत्र का लोथड़ा है। यह घड़ी समय बताने के साथ सर्दी-गरमी का अनुमान बताने वाले यंत्र 'बेरोमीटर' का काम देती है।

संतरी-बड़े-बड़े कार्यालयों पर संतरी (सिपाही) भी कंधे पर बन्दूक रक्खे इधर-उधर, दम लिये बिना टहलता रहता है ठीक इसी प्रकार प्राणवायु यहाँ पहरेदार है जो कभी भी रूके बिना बराबर अंदर आती रहती है और बाहर जाती रहती है यही उसका पहरा है यह कभी भी किसी उल्टे मार्ग पर चलकर आगे बढ़ने नहीं देती। उदाहरणरूप से यदि कोई अन्न-कण अथवा जल विन्दु अपना ठीक मार्ग पर छोड़कर अमाशय में जाने की जगह फेफड़ों की ओर जाने लगे तो यह उसे धक्का देकर बाहर निकाल देती है जिसे 'धसका लगना' बोलते है। अतः उपरोक्त सभी क्रियाओं का कर्त्ता अवश्यमेव है। वह दो या तीन नहीं है। केवल एक ही है, उसी को शास्त्रों में ईश्वर कहते हैं। जो शरीर रहित है जिसका निज और मुख्य नाम 'ओ३म्' है। ●

ओ३म्

द्रोपदी के पाँच पति नहीं थे और श्रीकृष्ण की अनेक पत्नियाँ नहीं थीं।

-डॉ० वेद प्रकाश आर्य

6 दिसम्बर 2015 के 'आर्यजगत' में 'एक या पाँच' शीर्षक से लिखा एक लेख पढ़ा। इसे पढ़कर अत्याधिक आश्चर्य हुआ कि अब आर्यसमाज के पत्र में भी पौरणिक मान्यता के लेख छपने लगे। इस लेख में लेखक अभिमन्यु कुमार ने बिना किसी प्रमाण के ही यह लिखा है कि द्रोपदी के पाँच पति थे तथा श्रीकृष्ण की अनेक पत्नियाँ थीं। महर्षि दयानन्द सरस्वती तथा उनके अनुयायी पंडित चमूपति बंकिमचन्द्र, स्वामी वदानन्द तीर्थ, अमर स्वामी जी, स्वामी जगदीश्वरानन्द, महात्मा प्रेम भिक्षु, पंडित भवानीप्रसाद, आदि अनेक प्रसिद्ध आर्य विद्वानों की यह सर्वविदित मान्यता है कि महाभारत मे अनेक स्थल प्रक्षिप्त हैं, परन्तु उक्त लेख के लेखक को इन सबकी मान्यता स्वीकार नहीं है।

द्रोपदी के पाँच पति और श्रीकृष्ण की अनेक पत्नियाँ बताना पूर्णतः असत्य, कपोल-कल्पित, वेद-विरूद्ध तथा पतिव्रता और श्रीकृष्णजी महाराज के चरित्रों के कलंकित करना है।

सत्य यह है कि द्रोपदी का एकमात्र पति युधिष्ठिर था और श्रीकृष्ण की एकमात्र पत्नि रूकक्मिनि थी। इन दोनों बातों को मैं सप्रमाण यहाँ सिद्ध कर रहा हूँ-

(अ) द्रोपदी के पाँच पति नहीं थे

आप सम्पूर्ण महाभारत को पढ़लीजिए, किन्तु आपको उसमें कहीं भी यह लिखा नही मिलेगा कि द्रोपदी का विवाह अर्जुन के साथ हुआ था। यह सत्य है कि अर्जन ने स्वयंवर में लक्ष्यबेध करके द्रोपदी को जीता था, किन्तु द्रौपदी का विवाह अर्जुन के साथ नहीं हुआ। द्रौपदी का विवाह तो केवल युधिष्ठिर के साथ ही हुआ था। इसके कतिपय प्रमाणों देखिये और सत्यासत्य का विचार कीजिए।

युधिष्ठिर-अर्जुन-संवाद-लक्ष्यवेध के पश्चात् युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा-

त्वया जिता फाल्गुन याज्ञसेनी,
त्वयैव शोभिष्यति राजपुत्री।
प्रज्वायतामाग्नीरमित्र साह,
ग्रहाण पाणिं विधिवत् त्वमस्यः।।

-(महाभारत, आदिपर्व, अध्याय-190, श्लोक-7)

अर्थ-हे अर्जुन! तुमने द्रौपदी को जीता है, इसलिए तुम्हारे साथ ही इस राजकुमारी की शोभा होगी। शत्रुओं का सामना करनेवाले वीर! तुम अग्नि

प्रज्वलित करो और विधिवत् इस राजपुत्री का पाणिग्रहण करो।

युधिष्ठिर के इस कथन का उत्तर देत हुए अर्जुन ने कहा–

मा मां नरेन्द्रत्वधार्मभाजं,
कृथा न धर्मोऽयमशिष्ट द्रष्टः ।
भवान् निवेश्य: प्रथम: ततोऽयं,
भीमो महाबाहुरचिन्त्यकर्मा।।
अहं ततो नकुलोऽनन्तरं में,
पश्चादयं सहदेवस्तरस्वी।
वृकोदरोऽहं च यमौ च राजन्नियं,
च कन्या भवतो नियोज्यः।।

(महाभारत, आदिपर्व, अध्याय-190 श्लोक-8, 9)

अर्थ-हे महाराज! आप मुझे अधर्म का भागी मत बनाइये, बड़े भाई के अविवाहित रहते हुए छोटे भाई का विवाह हो जाय यह धर्म नहीं है। ऐसा व्यवहार तो अनार्यों में देखा गया है। पहले तो आपका विवाह हो जाना चाहिये। तत्पश्चात् अचिन्त्यकर्मा अहाबाह भीमसेन का और फिर मेरा। तत्पश्चात् नकुल और फिर वेगवान् सहदेव विवाह कर सकते हैं। हे राजन! भाई भीमसेन में, नकुल, सहदेव, तथा यह राजकन्या हम सभी आपकी आज्ञा के अधीन हैं।

अर्जुन का यह कथन सिद्ध करता है कि द्रौपदी का विवाह अर्जुन के साथ नहीं वरन् सबसे बड़े भाई युधिष्ठिर के साथ हुआ था।

युधिष्ठिर और द्रुपद-संवाद–

अर्जुन के इस प्रस्ताव को युधिष्ठिर ने उचित समझा, किन्तु राजकन्या के पिता की स्वीकृति के बिना यह सम्भव नहीं था। ऐसा विचारकर युधिष्ठिर राजा द्रुपद के समीप गये और यह कहा–

तमब्रवीत् ततो राजा धर्मात्मा च युधिष्ठिर:।
ममापि दार सम्बन्धः कार्यस्तावद विशाम्पते।।

(महाभारत आदिपर्व अध्याय-194, श्लोक 22)

अर्थ-धर्मात्मा युधिष्ठिर ने राजा द्रुपद से कहा कि हे राजन! मेरा भी विवाह-संबध करने योग्य है। अर्थात् अभी तक मेरा भी विवाह नहीं हुआ है।

युधिष्ठिर के ये वचन सुनकर राजा द्रुपद युधिष्ठिर से कहते हैं–

भवान् वा विधिवत्
पाणिं गृहाणतु दुहितुर्मम।
यस्य वा मन्यसे वीर,
तस्य कृष्ण भुवादिश।।

(महाभारत आदिपर्व अध्याय-194, श्लोक-22)

हे वीर! आप ही विधिपूर्वक मेरी पुत्री का पाणिग्रहण करें अथवा आप अपने भाइयों में से जिसके साथ चाहें उसी के साथ कृष्णा के विवाह की आज्ञा प्रदान करें।

युधिष्ठिर और द्रुपद के इस संवाद से भी यह सिद्ध होता है कि द्रौपदी का पति युधिष्ठिर ही था।

3.व्यासजी का ओदश–वैशम्पायन जी कहते हैं–

ततोऽब्रवीद भगवान धर्मराजमद्यैव,

पुण्याहतमुत वः पाण्डवेय।
अद्य पौष्यं योगमुपैति चन्द्रमाः,
पाणिं कृष्णायास्त्वं गृहाणद्यपूर्वम्।।
ततो राजा यज्ञसेनः सुपुत्रो,
जन्यार्थमुक्तं बहु तत् तदग्राम्।।
समाजयामास सुतां च कृष्णा,
माप्लाव्य रत्नैर्बहुभिर्विभूष्य।।

–(महाभारत, आदिपर्व, अध्याय-197, श्लोक-5, 6)

अर्थ हे जन्मेजय! इसके पश्चात् भगवान व्यास ने धर्मराज युधिष्ठिर से कहा–हे पाण्डुनन्दन! आपलोगों के लिए आज ही पुण्य दिवस है। आज चन्द्रमा भरण-पोषण कारक, पुष्य नक्षत्र पर जा रहा है। इसलिए तुम्ही कृष्णा का पाणिग्रहण करो।

व्यासजी का आदेश सुनकर पुत्रों सहित राजा द्रुपद ने वर-वधु के लिए कथित समस्त उत्तम वस्तुओं को मँगवाया। और अपनी पुत्री कृष्णा को स्नान कर बहुतसे रत्नाभूषणों से विभूषित किया।

इस प्रमाण से भी यही सिद्ध होता है कि द्रौपदी का पति युधिष्ठिर ही था।

4.महर्षि धौम्य द्वारा विवाह-संस्कार–अब आप युधिष्ठिर और द्रौपदी के विवाह संस्कार देखिये–

ततः समाधाय स वेदपारगो,
जुहावा मंत्रैर्ज्वलितं हुताशनम्।
युधिष्ठिरं चाप्युपनीय मंत्रविद,
नियोजयामास साहेब कृष्णा।।
प्रदक्षिणं तौ प्रगृहीतपाणिकौ,
समानयामास स वेदपारगः।
ततोऽभ्यनुज्ञाय तमाजिशोभिन्नं,
पुरोहितो राजगृहाद् विनिर्ययौ।।

(महाभारत, आदिपर्व, अध्याय-197, श्लोक-11,12)

अर्थ–तत्पश्चात् वेदों के पारंगत विद्वान् मंत्रज्ञ पुरोहित धौम्य ने (वेदी पर यज्ञकुण्ड में) प्रज्वलित अग्नि की स्थापना करके उसमें मंत्रों द्वारा आहुति दी और युधिष्ठिर को बुलाकर कृष्णा के साथ गठबंधन कर दिया।

वेदों के परम्परागत विद्वान् पुरोहित विद्वान् पुरोहित ने उन दोनों दम्पति का पाणिग्रहण कराकर उनसे अग्नि की प्रदक्षिणा करावाई, फिर (अन्य शास्त्रोक्त विधियों का अनुष्ठान करके) उनका विवाह-संस्कार सम्पन्न कर दिया। इसके पश्चात् संग्राम में शोभा पानेवाला युधिष्ठिर को अवकाश देकर पुरोहित जी भी उस राजभवन से बाहर चले गए।

महाभारत में द्रौपदी और युधिष्ठिर के विवाह की जैसी यह विधि लिखी है, वैसी विधि अर्जुन, भीम, नकुल, और सहदेव के साथ सम्पूर्ण महाभारत में कहीं भी नहीं लिखी है। द्रौपदी और युधिष्ठिर के विवाह-संस्कार की इस विधि से यह पूर्णतः सत्य सिद्ध हो जाता है कि द्रौपदी का पति केवल युधिष्ठिर था, अन्य कोई नहीं।

यद्यपि उपर्युक्त प्रमाण ही पर्याप्त है, तथापि अभी और भी प्रमाण देखिये और सत्यासत्य का निर्णय कीजिए–

(5) **कुन्ती का आशीर्वाद**–युधिष्ठिर से द्रौपदी का विवाह होने के पश्चात् द्रौपदी को

आशीर्वाद देती हुई कुन्ती कहती है–

कुरुजांग्लमुख्श्येषु
राष्ट्रेषु नगरेषु च।
अनु त्वमभिषिच्यस्व,
नृपति धर्म वत्सला।।

(महाभारत, आदिपर्व, अध्याय-198, श्लोक-9)

अर्थ-तेरा पति कुरुजांगल देश के मुख्य-राष्ट्रों और नगरों का महाराजा हो और उसके साथ महारानी के पद पर तेरा अभिषेक हो। तेरे मन में धर्म के प्रति स्वाभाविक प्रेम हो।

यहाँ यह बात विचारणीय विषय है कि अनेक राष्ट्रों का महाराजा तो केवल एक ही मुख्य पुरुष हो सकता था, पाँचों पाण्डव तो महाराजा बन नहीं सकते थे। प्रचीन वैदिक परम्परानुसार राजा का बड़ा पुत्र ही महाराजा बन सकता था। अपने भाइयों में युधिष्ठिर ही सबसे बड़े थे। इसलिए युधिष्ठिर ही महाराजा बन सकते थे और युधिष्ठिर की पत्नि महारानी बन सकती थी। इस प्रकार कुन्ती द्वारा द्रौपदी को महारानी बनने का आशिर्वाद यही सिद्ध करता है कि युधिष्ठिर ही द्रौपदी का पति था।

(6) **द्रौपदी का कथन**–12 वर्ष के बनवास का समय पूर्ण होने पर पाँचों पाण्डव और द्रौपदी अपने नाम और वेश परिवर्तित कर मत्स्यदेश के राजा विराट् के नगर में रह रहे थे। उस समय द्रौपदी का नाम सैरन्ध्री था। राजा विराट् की पत्नी का भाई कीचक द्रौपदी पर कुदृष्टी रखता था। इस स्थिति से अत्यन्त दुःखी होकर द्रौपदी भीमसेन के पास जाकर रोने लगी। जब भीमसेन ने द्रौपदी से यह पूछा कि तुम क्यों रोती हो?तब द्रोपदी ने जो कहा वह द्रष्टव्य है–

अशोच्यत्वं कुतस्तस्य,
यस्य भर्ता युधिष्ठिरः।
जानन सर्वाणि दुःखानि,
किं मां त्वं परिपृच्छासि।।

(महाभारत विराट पर्व, अध्याय 18, श्लोक-2)

अर्थ-द्रौपदी कहने लगी जिस नारी का पति राजा युधिष्ठिर हो, वह बिना शोक रहे, यह कैसे सम्भव हो सकता है?तुम मेरे सब दुःखों के जानते हुए भी मुझसे कैसे पूछते हो?

द्रौपदी का यह कथन स्वयं सिद्ध हो रहा है कि द्रौपदी का पति केवल युधिष्ठिर ही था।

(7) भीमसेन की घोषणा–भीमसेन ने उस दुष्ट कीचक को मार दिया था, जो द्रौपदी के साथ दुराचार करना चाहता था। भीम प्रसन्न होकर कहता था–

अद्याहमनृणो भूत्वा,
भ्रातुर्भायापाहारिणम्।
शान्ति लब्धास्मि परमां,
हत्वा सरन्ध्रि कण्टकम्।।

(महाभारत विराटपर्व अध्याय-22, श्लोक-79)

अर्थ–जो सौरिन्ध्र (द्रौपदी) के लिए काँटा था। जिसने मेरे भाई की पत्नी का अपहरण करने की चेष्टा की थी। उस दुष्ट (कीचक) को मारकर मैं आज उऋण हो जाऊँगा और मुझे परम शन्ति मिलेगी।

यहाँ यह बात ध्यान देने की है कि यहाँ पर भीमसेन ने सैरान्ध्रि (द्रौपदी) को अपनी पत्नी नहीं कहा, वरन् अपने भाई की पत्नी कहा है।

इस प्रमाण से भी यह सिद्ध होता है कि द्रौपदी का पति युधिष्ठिर था अन्य कोई नहीं।

(8) **अपनी पत्नी को दाव पर लगाना**–महाभारत में युधिष्ठिर ने द्रौपदी को दाव पर लगा दिया था। यदि द्रौपदी अर्जुन अथवा पाँचों पाण्डवों की पत्नी थी, तो युधिष्ठिर ने उसे जुए में दाव पर कैसे लगा दिया?अन्य चारों भाइयों की अनुमती के बिना, युधिष्ठिर को यह अधिकार ही नहीं था, कि वह द्रौपदी को जुए में दाव पर लगा सके। युधिष्ठिर केवल अपनी पत्नी को ही दाव पर लगा सकता था, अन्य या अन्यों की पत्नी को नहीं।

इस प्रमाण से यह भी सिद्ध होता है कि द्रौपदी का पति केवल युधिष्ठिर ही था।

(9) **जुए के समय पाँचों पाण्डवों की पत्नियाँ**–जिस समय युधिष्ठिर जुआ खेला था, उस समय पाँचों पाण्डवों की पत्नियाँ भी विद्यमान थीं, जो इस प्रकार हैं–

1. युधिष्ठिर की पत्नि=द्रौपदी देवी, 2. भीमसेन की पत्नि–बलन्धरा, 3.अर्जुन की पत्नी=सुभद्रा, 4.नकुल की पत्नि=करेणुमती, और 5.सहदेव की पत्नि=विजया।

(महाभारत आदिपर्व अध्याय-95, श्लोक-76-82)

जब पाँचों पाण्डवों की अपनी-अपनी पत्नियाँ विद्यमान थीं, तब द्रौपदी को पाँचों पाण्डवों की पत्नि कैसे माना जा सकता है?

इस प्रमाण से यह सिद्ध होता है कि युधिष्ठिर ने केवल अपनी ही पत्नी को जुए के दाव पर लगाया था।

10. **श्रीकृष्ण की उपस्थिति**–द्रौपदी के स्वयंवर और विवाह संस्कार के समय धर्मात्मा, वेद-मर्यादा के रक्षक, वेदों के विद्वान्, सच्चे ईश्वर भक्त, महान् यौद्धा और योगीराज श्रीकृष्ण महाराज उपस्थित थे। एक राजकन्या को पाँच भाइयों की पत्नी बना देना पूर्णतः वेद-विरूद्ध, सनातन वैदिक परम्परा-विरूद्ध, एक नारी पर घोर अत्याचार और अधर्म है।

धर्म-रक्षक श्रीकृष्ण महाराज इस महापाप को भी होने नहीं दे सकते थे। इस प्रकार श्रीकृष्ण के सामने द्रौपदी का विवाह पाँचों पाण्डवों से नहीं हो सकता था और हुआ भी नहीं। श्रीकृष्ण के समक्ष ही द्रौपदी का विवाह युधिष्ठिर से ही हुआ था।

11. **राजा द्रुपद का गौरव**–पांचाल देश के राजा द्रुपद एक महाबलशाली और महान गौरवशाली राजा था। ऐसा बलशाली राजा अपनी कन्या का विवाह पाँच भाइयों के साथ कभी नहीं करवा सकता था। एक सामान्य बुद्धिवाला मनुष्य भी इस बात को समझ सकता है। किन्तु पता नहीं शिक्षित लोगों की समझ में यह छोटी-सी बात भी समझ में क्यों नहीं आती?

12. **असत्य एवं प्रक्षिप्त प्रकरण**–जो सज्जन द्रौपदी के पाँच पति मानते हैं, वे महभारत

के आदि पर्व तक का प्रकरण ध्यानपूर्वक पढ़कर देखें। उन्हें सत्यासत्य का दर्शन हो जाएगा।

एक चक्रा नगरी में एक ब्राह्मण से द्रौपदी के स्वयंवर का समाचार सुनकर जब पाँचों पाण्डव स्वयंवर में जाने के लिए व्याकुल हो गए थे, तब उनकी माता कुन्ती ने स्वयं ही स्वयंवर में जाने का प्रस्ताव रखा था। मार्ग में व्यासजी ने उन्हें पांचाल नगर में जाने की सम्मति दी थी। स्वयं माता कुन्ती को यह भलीभाँति पता था कि मेरे पुत्र स्वयंवर में गये हैं, कहीं भिक्षा माँगने के लिए नहीं गए हैं। स्वयंवर अर्जुन द्वारा लक्ष्यवेध के पश्चात्, युधिष्ठिर नकुल और सहदेव माता कुन्ती को तत्काल ही सूचना देने के लिए माता के पास घर पर आ गए थे।

एक साधारण बुद्धि का मनुष्य भी यह स्वीकार करेगा कि युधिष्ठिर ने अपनी माता के समीप पहुँचकर स्वयंवर मे विजय प्राप्त करने का सुखद समाचार अवश्य सुनाया होगा। इसके साथ ही माता कुन्ती भी स्वयंवर का समाचार सुनने के लिए अवश्य पूछा होगा। उत्तर में उसके पुत्रों ने भी अपनी माता को स्वयंवर में अर्जुन द्वारा लक्ष्यवेध का समाचार सुनाया होगा।

इन प्रसंगो पर न्यापूर्वक विचार करने से यह सिद्ध हो जाता है कि पाँचों पाण्डवों ने माता कुन्ती से यह नहीं कहा था कि हम भिक्षा लाए हैं। तथा कुन्ती ने भी यह नहीं कहा था कि पाँचों बाँटकर खा लो।

इसके साथ ही राजा द्रुपद द्वारा द्रौपदी को विवाह से पूर्व ही अर्जुन और भीम के साथ कुम्हार के घर भेज देने का प्रकरण भी पूर्णतः असंगत, असत्य और प्रक्षिप्त है।

सत्य यह है कि अर्जुन द्वारा लक्ष्यवेध के पश्चात युधिष्ठिर नकुल और सहदेव के स्वयंवर-विजय का सुखद समाचार देने के लिए ही माता कुन्ती के पास चले गए थे, किन्तु अर्जुन और भीम द्रौपदी के साथ राजा द्रुपद के राजभवन में ही रूक गए थे। द्रौपदी को पाँचों पाण्डवों की पत्नी बनाने का यह प्रकरण महाभारत में बाद में मिलाया गया है, जो पूर्णतः कपोल-कल्पित है।

उपर्युक्त सभी प्रमाणों एवं तर्कों से यह सिद्ध होता है कि कृष्णा (द्रौपदी) का विधिवत् विवाह केवल युधिष्ठिर से ही हुआ था और युधिष्ठिर ही द्रौपदी का पति था, अन्य कोई नहीं ।

(आ)श्रीकृष्ण की अनेक पत्नियाँ नहीं थी–'आर्यजगत्' के इसी लेख में लेखक ने अपनी कपोल-कल्पना से यह भी लिख दिया कि उस समय की परम्परानुसार श्रीकृष्ण की भी अनेक पत्नियाँ थीं, जिनके नाम रूकमिणी, सत्यभामा और जाम्बवन्ती बताए हैं। हाँ लेखक ने श्रीकृष्ण के चरित्र पर इतनी दया तो कर दी कि उन्होंने कृष्ण की पत्नियों की संख्या सोलह हजार एक सौ आठ नहीं बतायी।

यहाँ भी लेखक ने आर्य समाज के संस्थापक महर्षिदयानन्द सरस्वती तथा अनेक आर्य विद्वानों की स्वस्थ मान्यता के विपरीत

केवल पौराणिक गप्प ही लिखा हैं लेखक ने अपने मत के पक्ष में महाभारत का कोई प्रमाण भी प्रस्तुत नहीं किया। अपने वैदिक मान्यता के विपरीत जीवन जीनेवाले तत्कालीन अन्य राजाओं के समान ही श्रीकृष्ण की भी अनेक पत्नियाँ बना दीं।

सत्य बात तो यह है कि श्रीकृष्ण वैदिक मान्यताओं के अनुसार जीवन जीनेवाले, एक पत्नीव्रती, सदाचारी, संयमी, वेदों के विद्वान् वैदिक धर्म के रक्षक, अधर्म के विनाशक, महान् योगी और महात्मा थे।

महर्षि दयानन्द सरस्वती तथा उनके अनुयायी-पंण्डित चमूपति बंकिमचंद्र, शास्त्रार्थ महारथी अमर स्वामी, स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती, आचार्य प्रेमभिक्षु, आदि अनेक आर्य विद्वानों ने केवल रूक्मिणि को ही श्रीकृष्ण की एकमात्र पत्नी स्वीकार की है। क्योंकि सत्य यही है कि महाभारत मे केवल रूक्मिणि को ही श्रीकृष्ण की पत्नि बताया गया है, अन्य किसी को नहीं । इस संबंध में कतिपय प्रमाण यहाँ प्रस्तुत है–

1.महर्षि दयानन्द का मत–(अ) ''देखो श्रीकृष्णजी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। इनके गुण, कर्म स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश हैं, जिनमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मृत्यु पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा।''

(सत्यार्थ प्रकाश एकादश समुल्लास)

महर्षि दयानन्द ने आप्त पुरुषों की परिभाषा इस प्रकार लिखि है–''जो छलादि दोष-रहित, धर्मात्मा, विद्वान्, सत्योपदेष्टा, सब पर कृपादृष्टि से वर्तमान होकर अविद्यान्धाकार का नाश करके अज्ञानी लोगों के आत्माओं में विद्या-रूपी सूर्य का प्रकाश सदा करे, उसे आप्त कहते हैं।''

(आर्योद्देश्यरत्नमाला) एकादश एवं द्वादस

(आ)महर्षि दयानन्द सरस्वती ने 'सत्यार्थ प्रकाश' के सम्मुलास में श्रीकृष्ण जी को 'महान धार्मिक महात्मा' तथा 'महात्मा' लिखा है।

(ङ.)महर्षि दयानन्द ने 'नारायण स्वामी मत-खण्डन' नामक पुस्तक में लिखा है–''राधा तो अनथ नामक एक ग्वाले की स्त्री थी। कृष्ण का उससे कोई संबंध नहीं था। कृष्ण की स्त्री का नाम रूक्मिणी था।''

–(दयानन्द ग्रन्थमाला, पृष्ठ 721)

(ई)''देखो! मूर्ति पूजा से श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्ण, नारायण और शिवादि की बड़ी निन्दा की और उपहास होता है। सब कोई जानते हैं कि वे बड़े महाराजाधिराज थे और उनकी स्त्री सीता और रूक्मिणी, लक्ष्मी और पार्वती आदि महाराणियाँ थी।'' (सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास)

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने महाभारत में सत्य की खोज करके ही श्रीकृष्ण के संबंध उपर्युक्त बातें लिखि हैं।

1.यदि श्रीकृष्ण अनेक स्त्रीयों से विवाह करते तो महर्षि दयानन्द कभी भी उन्हें महान् धर्मात्मा, आप्त पुरुष, महात्मा नहीं कहते। महाभारत में कहीं भी यह नहीं लिखा है कि श्रीकृष्ण ने अनेक स्त्रियों के साथ विवाह किया था। उनका विवाह केवल रूक्मिणि के साथ हुआ था। इसी सत्य के आधार पर महर्षि दयानन्द ने भी कृष्ण की पत्नि रुक्मिणी को ही स्वीकार किया है।

2.रुक्मिणी–कृष्ण का विवाह–रूक्मिणी विदर्भ देश के राजा भीष्मक जी की पुत्री थी। वह श्रीकृष्ण से अत्यन्त प्रेम करती थी और उन्हीं के साथ विवाह करना चाहती थी। श्रीकृष्ण भी रूक्मिणी को चाहते थे, किन्तु भीष्मक ने जरासंध के कहने पर उसके सेनापति शिशुपाल से रूक्मिणी का संबंध करना निश्चित कर दिया था। विवाहोत्सव पर मगध–साम्राज्य के सभी राजा आमन्त्रित किए गए थे। विवाह से एक दिन पूर्व श्रीकृष्णजी समारोह पूर्वक वहाँ पहुँच गए और अवसर पाकर रूक्मिणी को अपने साथ निकालकर ले गए। विवाहोत्सव में आये हुए राजाओं ने श्रीकृष्ण का मार्ग रोका, किन्तु श्रीकृष्ण ने उन सभी को परास्त कर दिया। पीछे से बलराम, आदि वीरों ने अपनी सेनाओं सहित शत्रुओं का सामना किया।

रूक्मिणी जी का भाई रूक्मि भी अद्वितीय वीर था। वह भी श्रीकृष्ण के साथ रूक्मिणी के विवाह का विराधी था। उसने अपनी सेना लेकर श्रीकृष्ण का पीछा किया। श्रीकृष्ण ने उसे अपने निकट आने दिया। श्रीकृष्ण के शील, सौन्दर्य और वीरता के सामने रूक्मि परास्त हो गया और श्रीकृष्ण रुक्मिणी को साथ लेकर द्वारिका आ गए। श्रीकृष्ण ने द्वारिका में ही रुक्मिणी के साथ वैदिक विधि-विधान से विवाह किया।

3.रुक्मिणी के साथ तपस्य–यद्यपि अनेक स्त्रियों से विवाह करना वेद विरूद्ध एवं अधर्म है, तथापि महाभारत काल में बहुपत्नि-प्रथा प्रचलित थी। किन्तु श्रीकृष्ण वैदिक धर्म के रक्षक और आप्त पुरुष थे। इसीलिए उन्होंने एकमात्र रूक्मिणी से ही विवाह करके एक पत्निव्रत का पालन किया और बहुपत्निप्रथा को तोड़ा।

रूक्मिणी से विवाह के पश्चात् श्रीकृष्ण और रूक्मिणी ने हिमालय पर्वत पर 12 वर्षों तक तपस्या की, जिसके फलस्वरूप उनके प्रद्युम्न नामक पुत्र हुआ। इसका प्रमाण द्रष्टव्य है–

ब्रह्मचर्य महद्घोरं चीर्त्वा द्वादशवर्षिकम्।
हिमवत्पार्श्वमास्थाय यो मया तपसार्जितः।।
समानपव्रतचारिण्यां रूक्मिण्यां योऽन्वजायत।
सनत्वकुमारस्तेजस्वी प्रद्युम्नो नाम मे सुतः।।

(महाभारत, सौप्तिक पर्व, अध्याय-12, श्लोक-30/31)

अर्थ–श्रीकृष्ण कहते हैं कि मैंने 12 वर्षों तक घोर ब्रह्मचर्य का पालन करके हिमालय की घाटी में रहकर बड़े भारी तप के द्वारा जिसे प्राप्त किया था, मेरे समान व्रतपालन करनेवाली रूक्मिणी के गर्भ से जिसका जन्म हुआ है, जिसके रूप में साक्षात् तेजस्वी सनत्वकुमार ने ही मेरे यहाँ जन्म लिया है,

वह प्रद्युम्न मेरा प्रिय पुत्र है।

4.एक अन्य प्रमाण देखिए–

आहुकं पितरं वृद्धं मातरंच यशस्विनीम्।
स वृद्धैरभ्यनुज्ञातो रूक्मिण्या भवनं भयौ।।

(महाभारत, सभापर्व, अध्याय-2, श्लोक 34, 36)

अर्थ–द्वारिका पहुँचकर श्रीकृष्ण सात्वत-वृद्ध आहुक और यशस्विनी माता से मिले। सबका यथायोग्य सत्कार करने के पश्चात् गुरुजनों की अनुज्ञा लेकर रूक्मिणी के महल में चले गए।

सम्पूर्ण भारत में श्रीकृष्ण ने रूक्मिणी के अतिरिक्त अन्य किसी स्त्री के साथ न तो विवाह किया और न ही किसी को अपनी पत्नी बताया है।

इन प्रमाणों से यह सिद्ध हो जाता है कि श्रीकृष्ण महाराज की एकमात्र पत्नि रूक्मिणी ही थी, अन्य कोई नहीं।

अंत में लेखकों से विनम्र निवेदन है कि वे वैदिक धर्म और महर्षि दययानन्द सरस्वती की पवित्रतम मान्यताओं तथा श्रीकृष्ण के चरित्र को कलंकित करने का पाप न करें। पौराणिक लोग तो प्रतिदिन यह पाप कर ही रहे हैं। आप क्यों इस पाप के भागी बनते हैं?

इसके साथ ही आर्य पत्र-पत्रिकाओं के विद्वान् सम्पादकों से भी प्रार्थना है कि वे आर्यमान्यताओं के विपरीत लिखे गए लेखों को प्रकाशित न किया करें। इसी में सबका हित है।

पेज 22 का शेष

का आचरण करते हुए, सत्य मार्ग पर चलते हुए ही जुटाए जाना चाहिए। राज्य का संचित धन कभी भी छल से न संग्रह किया जावे। किसी से कभी भी अकारण धन न छीना जावे। धन संग्रह करते समय किसी को दु:ख क्लेश न दिया जावे, किसी की जान न ली जावे, ब्लात न छीना जावे, राज्य के नियमों के अनुसार जो न्याय संगत धन हो वह ही एकत्र किया जावे। इस के साथ ही यह भी कहा गया है कि इस धन को संग्रह करते हुए किसी भी प्रकार का भ्रष्ट आचरण न किया जावे। यह धन कभी भी भ्रष्टाचार से न कमाया जावे। इस प्रकार के आर्थिक विकास के लिए उचित व समुचित सहयोग प्रजा से लिया जावे, अपने सहयोग मंत्री गण से भी सहयोग लिया जावे। इस धन संग्रह के लिए जन-जन को प्रोत्साहन निरंतर दिया जाता रहना उत्तम होता है। अत: बुद्धि पूर्वक किये जाने वाले शुभ कर्मों को बढ़ाने का सदा यत्न किया जाना चाहिये अर्थात् इस प्रकार की आर्थिक सुहृदयता को पाने के लिए सदा सत्य को अपनाया जावे, सदा सत्याचरण किया जावे तथा जिससे यह धन प्राप्त किया जावे, वह भी राज्य का अपने अर्थ से सहयोग करने में गर्व का अनुभव करें।

यह तो ऋगवेद का 7.41 का मंत्र संख्या तीन है। ऋगवेद 7.41 के अन्य मंत्र भी अर्थ मंत्री के संबंध में बहुत सुंदर प्रकाश डालते हैं। इसलिए अर्थ सम्बन्धी विशद् व्याख्या के लिए इन मंत्रों को भी यदि देख व समझ लिया जावे तो सोने पर सुहागा होगा।

होलिका दहन क्यों ? आओ जानें

पिछले अंक का शेष

पदम् पुराण उत्तरखण्ड श्लोक 45) हिरण्यकश्यपु को अपने और अपने पुत्र के बीच की यह विषमता खटक रही थी इसलिए उसने अपनी बहन होलिका से उसे गोद में लेकर आग में बैठने को कहा वह आग में बैठ गई और इस प्रकार होलिका जल गई और विष्णु का भक्त होने से प्रहलाद बच गया। होलिका की स्मृति में होली का त्यौहार प्रतिवर्ष मनाया जाता है जो नितान्त मिथ्या है। मन गढन्त है।

समीक्षा

कुछ लोग तथाकथित होली से सम्बन्धित कहानी को मिथ्या नहीं ईश्वर की कृपा मानते हैं। यदि यह कथा सत्य है तो बताओ कि यदि होलिका को अग्नि से न जलने का वरदान प्राप्त था तो फिर भी वह जल क्यों जाती है?इससे पूर्व हिरण्यकशिपु को अपने पुत्र को इस प्रकार छल, कपट से मारने की क्या आवश्यकता थी?वह तो निर्मम तानाशाह था। यह स्वयं उनकी हत्या कर सकता था अथवा करा सकता था। अतः घटनाक्रम जिस प्रकार मोड़ लेता है और फिर उसे होलिकोत्सव से जोड़कर देखने के लिए हमें प्रेरित और विवश किया जाता है वह न तो विश्वसनीय है और न ही सत्य हैं यह बात मिथ्या ही नहीं असम्भव भी है कि होलिका अग्नि में जल गई और प्रहलाद बच गया। क्योंकि अग्नि ऐसा तत्व है जिसका स्वाभाविक गुण ही जलाना है अर्थात् अग्नि का धर्म जलाना है। उसमें जलने के लिए कोई भी बैठ जाए, चाहे वह आस्तिक हो अथवा अथवा अभिशापी और चाहे होलिका हो अथवा प्रहलाद। अग्नि का धर्म जलाना है तो वह तो जलाएगी ही। वह कभी अपने धर्म को नहीं छोड़ती। और भी अग्नि जड़ होने से यह नहीं जानती कि प्रहलाद आस्तिक है इसे न जलाऊ। जिस प्रकार सूर्य जड़ होने से अपना प्रकाश सम्पूर्ण संसार के जीवों को समान रूप से देता है। इसी प्रकार अग्नि भी कभी अपने धर्म से नहीं गिरती। चलो यदि मान भी लें कि 'प्रहलाद' बच गए और 'होलिका' जल गई । तो यह विचार करने की बात है कि भक्त प्रहलाद को होलिका द्वारा जलाने का प्रयास गलत था या सही। यदि गलत था तो होलिका को माता क्यों कहते हैं और उसकी जय क्यों बोलते हैं? यदि जय ही बोलनी है तो महारानी लक्ष्मीबाई जैसी वीरांगना की जय बोलो जिसने देश, धर्महित बलिदान दियां इसके अलावा उस माता की पूजा अथवा सत्कार करो, जय बोलो जिसने अनेक कष्ट सह करके तुम्हें जन्म दिया। स्वयं गीले में सोकर तुम्हें सूख में सुलाया और तुम्हारा पालन पोषण किया। भला होलिका ने तुम्हारे लिए क्या किया? किया तो सिर्फ अपने भतीजे 'प्रहलाद' को जलाने का प्रयास। फिर उसकी जयघोष क्यों? तुम्हारे बाप, दादा, परदादा इत्यादि मरने पर जहाँ जलाए गए उस स्थान का नाम शमशान है। जहाँ होलिका जलकर भस्म हुई थी वह स्थान भी शमशान हुआ तो आप लोग कभी शमशान में अपने मरे हुए बाप-दादा इत्यादि

पालन-पोषण किया, शिक्षा-दीक्षा में हर प्रकार प्रयास किया, तुम्हारा निर्माण किया, धन-सम्पत्ति तुम्हारे लिए छोड़ गए तब भी शमशान में कभी उनके लिए परिक्रमा व जयघोष नहीं करने गए तो होलिका ने तो तुम्हारे लिए किसी भी प्रकार का कोई सहयोग नहीं किया। फिर उसकी परिक्रमा व जयघोष क्यों करते हो?आइये मनगढ़न्त कहानी छोड़कर सत्य की खोज करें।

किसी भी अनाज के ऊपर की पर्त को होलिका कहते हैं। जैसे चना, मटर, गेहूँ, जौ की गिद्दी की उपर वाली पर्त। इसी प्रकार चना, गेहूँ, मटर, जौ की गिद्दी (गिरी) को प्रहलाद कहते हैं। होलिका को माता इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह चना इत्यादि का निर्माण व रक्षा करती है। 'माता निर्माता भवति' यदि यह पर्त अर्थात् होलिका न हो तो चना मटर रूपी प्रहलाद का जन्म नहीं हो सकता और भी जिस प्रकार माँ अपने बच्चे को किसी भी आपत्ति से बचा लेती है और यदि अग्नि में जलना भी पड़े तो बच्चे को बचाकर स्वयं को आहत करने के लिए तत्पर हो जाती है। इसी प्रकार चना, मटर, जौ व गेहूँ जब अग्नि में भुनते हैं तो वह होलिका अर्थात् गेहूँ व जौ इत्यादि का ऊपरी खोल पहले जलता है और अंदर की गिरी सुक्षित रहती है अर्थात् प्रहलाद बच जाता है। उस समय प्रसन्नता से उस माता की जयघोष की जाती है। अतः प्रहलाद रूपी गिरी को बचाकर अपने को आहुत करने के कारण होलिका को माता कहा जाता है।

होली की पुरातन परंपरा एवं आधुनिक विकृत स्वरूप

भारतवर्ष के प्राचीन समाज में होली मनाने की प्राचीन परंपरा से वर्तमान की यदि तुलना की जाये तो यह अत्यन्त निम्न कोटि की ही परंपरा कही जायेगी। प्राचीन काल में ऋषि लोग इस पावन पर्व पर विशाल यज्ञों का आयोजन किया करते थे। इन विशाल यज्ञों में सर्वजन कल्याणार्थ आहुतियाँ अर्पित की जाती थी। यही विशाल यज्ञ धीरे-धीरे सारे गाँवों और नगरों के सामूहिक यज्ञ बन गये । पुनश्चः इन सामूहिक यज्ञों ने पुराणकाल के भारतीय पतनकाल में होलिका दहन का स्वरूप लिया। इस काल में भी यह बात अच्छी रही कि सारा गांव एक ही होलिका का दहन करता था और कोई ब्राह्मण कुछ न कुछ मंत्रों का उच्चारण कर वातावरण को अच्छा बनाने का प्रयत्न करता था। इसके पश्चात् यह प्रक्रिया भी क्षीण से क्षीणतर होती चली गयी। जिसने आज का विकृत और घिनौना स्वरूप ले लिया। आजकल तो गांवों में सारे गांव की एक होली नहीं जलती, अपितु मुहल्ले-मुहल्ले की अलग-अलग होली जलती है। यह प्रवृति हमारी विखंडित सोच की सूचक है। कृति में विखंडन, वृत्ति के विखंडन का परिणाम है। होली तो समाजवाद की दिशा में हमारे ऋषि पूर्वजों द्वारा उठाया गया एक सराहनीय पग था। आज यह पर्व समाजवाद के स्थान पर विघटन के बीज बो रहा है। व्यक्ति ईर्ष्या और द्वेष की घृणित वृत्ति को इस पर्व पर अग्नि को समर्पित कर हृदय की शुद्धता और पवित्रता पर ध्यान केन्द्रित करता था। इस प्राचीन परंपरा के स्थान पर आजकल

व्यक्ति ईर्ष्या और द्वेष के सर्प को पूरे वर्ष दूध पिलाता है और होली आने तक उसे पूर्णरूपेण पाल-पोसकर नवयुवक बना डालता है। यौवन की मदोन्मत्तता उसे किसी से गले मिलने को नहीं अपितु किसी का गला काटने के लिए प्रेरित करती है। अतः आज के दूषित परिवेश में इस पर्व की पावनता को मानव की प्रतिशोध की भावना ने इस प्रकार विषैला बना डाला है। यह पर्व हमें तोड़ने की नही जोड़ने की शिक्षा देता है। इसलिए हे मानव ! गला काटने का घिनौना खेल छोड़, इस पर्व के माध्यम से सामाजिक समरसता की स्थापना में सहायता बन। इसी से जीवन का कल्याण होगा।

होली का वास्तविक स्वरूप एवं वैज्ञानिक रहस्य

इस पर्व का प्राचीनतम नाम वासन्ती नव सस्येष्टि है वासन्ती = वसन्त ऋतु में, नव = नये, सस्य = अनाज, येष्टि = यज्ञं अर्थात् बसन्त ऋतु के नये अनाजों से किया हुआ यज्ञ, परन्तु होली शब्द होलक का अपभ्रंश है अर्थात् बिगड़ा हुआ स्वरूप है। उदाहरण स्वरूप ऐतिहासिक ग्रन्थ रामायण के कुछ विशेष तथ्य जिनें मिलावट की गई है यहाँ बताता हूँ-''सीता जी की माता का नाम 'सुनैना धरणी' था। मगर कुछ धूर्त पेटार्थी ब्राह्मणों के द्वारा धरणी की जगह 'धरती' करके जनकपुत्री सीता को गाजर, मूली की तरह धरती से उत्पन्न बताकर इतिहास की हत्या कर दी गई। इसी प्रकार हनुमान की माता अंजना व पिता पवन बिना पूँछ के थे पर वीर हनुमान की सर्वत्र पूछ को पूँछ बताकर 'बन्दर' बना दिया। जो पृथ्वी से 13 लाख गुणा बड़ा सूर्य मुख में निगल गया। इसी प्रकार चार वेद छः शास्त्रों के ज्ञाता होने के कारण महाबली रावण को 'दशानन्' की उपाधि से सुशोभित किया गया था। लेकिन यहाँ भी धूर्तों ने दशानन का अर्थ दशमुख वाला कर दिया। इसी प्रकार होली शब्द का प्रयोग 'होलक' शब्द को बिगाड़ कर किया गया है। इसके साथ-साथ 'होलिका' हिन्दू पंचांग के अनुसार वर्ष का अंतिम पर्व है तो इसका हिन्दू संवत् में वर्ष का अंतिम पर्व होना और इसे समाज में परंपरानुसार होली कहना इसके एक अन्य गूढ़ अर्थ और कारण की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। इस पर्व पर जो यज्ञ किया जाता था उसमें हमारे पूर्वज लोग विशेषतः हमारे ऋषिगण हमसे अपने पूरे वर्ष के गलत कार्यों का प्रायश्चित भी कराया करते थे। जिसके अनुसार उन गलत कार्यों की नववर्ष में पुनरावृत्ति न हो इस भाव से यज्ञ में आहुति दी जाती थी। गलती अब तक जो होनी थी सो होली अब भविष्य में ऐसा नहीं हो, यह भावना गुप्त रूप से कार्य करती थी। इसलिए भी इस पर्व को होली कहा जाने लगा। लोकाचार में प्रचलित भी है कि जो 'होली सो होली' अर्थात् जो कुछ भी वर्ष भर में आपस में मनमुटाव अथवा वैरभाव था। उसे दिल से निकालकर परस्पर प्रेम की भावना जागृत करें। सदाचार, समरसता आदि मानवीय भाव हमारे जीवन का आभूषण हो जिस प्रकार पेड़-पौधों की नवीन कोमल पत्तियाँ अपने साथ-ही-साथ फल की प्रतीक बौर को लाकर

उन्हें सभी प्राणियों के लिए उपयोगी एवं फलदायी बना डालती है उसी प्रकार हमारा जीवन भी पूरे समाज के लिए उपयोगी व फलदायी हो। प्रकृति का कैसा नियम है कि पुराने पत्तों को छोड़कर पतझड़ के पश्चात् पेड़-पौधों पर जब नवीन पत्तियाँ आती है तो अपने साथ फल की बौर भी लाती है। मानो ये कह रही हो कि पुरानी बात समाप्त हुई अब नया संदेश रचेंगे। ''छोड़ो कल की बातें, कल की बात पुरानी नए दौर में लिखेंगे, मिलकर नई कहानी''। मानव भी इसी भावना से अपनी जीवन शैली का विकास करे, तो यह वसुन्धरा स्वर्ग समान हो जाए। यही संदेश हमारा पावन पर्व होली हमें देता है। इसलिए भी होलक शब्द हटाकर होली का प्रयोग किया गया एवं अधजले अन्न को 'होलक' कहते हैं इसी कारण इस पर्व का नाम होलिकोत्सव है। भारतीय ऋषि आविष्कृत वैदिक पर्व प्रणाली में होलिकोत्सव फाल्गुन मास में जिस समय आता है उस समय सारी प्रकृति में परिवर्तन की प्रतीति अनुभव होती है। पेड़-पौधे नई-नई पत्तियों से भलीभांति लद गये होते हैं, आम आदि के पौधों पर बौर आ रहा होता है। फसल में हल्का पीलापन छा जाता है। खेतों की लहलहाती फसल को देखकर किसान का अंतर्मन भी लहलहाने लगता है। पशु-पक्षी तक अपना रंग बदलने लगते हैं। पुराने पंख छोड़कर उसी प्रकार नये रंग के पंखों में रंग जाते हैं, जिस प्रकार पेड़ पौधे पुराने पत्तों का परित्याग कर पुनः नये पत्तों को ग्रहण कर अपना श्रृंगार करके दुल्हन की भांति सजग खड़े हो जाते हैं। गाय आदि पशु भी अपने रोम डालते हैं। नये रोम आकर उन्हें भी नया श्रृंगार पहना डालते हैं। और तो और स्वयं मनुष्य की चमड़ी भी 'जाड़े की पिटी हुई' होकर अपना स्वरूप परिवर्तित कर डालती है। कहने का आशय है कि प्रकृति में चहुं और परिवर्तन की लहर दौड़ी सी अनुभव होती है। प्रकृति अपना रूप परिवर्तित कर पुनः सज-धजकर नववधू सी लगने लगती है। इसी समय किसान अपने खेत पर षाढ़ी की फसल-गेहूँ, जौ, चना व मटर आदि की अधपकी फसल को भूनकर खाता हुआ बहुत ही मस्ती का अनुभव करता है। इस अधपके अन्न को भूनकर खाने को वह 'होला' कहता है। इस वैज्ञानिक सत्य को पौराणिक पंडित किसी कथानक से नहीं जोड़ पाये। उन्हें वह होला ही क्यों कहता है?होलिका का भाई कहीं होलक अथवा होला तो नहीं था?

नहीं, ऐसा नहीं है। अपितु संस्कृत में अधपके अन्न को होलक कहते हैं-तृणाग्निं भ्रष्टार्द्धपक्व शमीधान्यं होलकः। होला इति हिन्दी भाषा। (शब्द कल्पद्रुम कोष) अर्थात् तिनकों की अग्नि में भूने हुए अधपके शमीधान्य फली वाले अन्न को 'होलक' कहते हैं जिसे हिन्दी में होला कहते हैं। 'भाव प्रकाश' ग्रन्थ के अनुसार-अर्द्धपक्वशमी धान्यै स्तृणा भ्रष्टैश्च होलकः होलकोऽल्पानिलो मेदकाल दोषश्रमा यहः भवेदभो होलको यस्य तत्तदगुणो भवेतः। अर्थात् तिनको की अग्नि में भुने हुए (अधपके) शमी-धान्य (फली वाले अन्न)

को होलक कहते हैं यह होला स्वल्प वात हैं यह मेद, कफ और थकान के दोषों को शमन करता है अर्थात् उन्हें समाप्त करता है। जिस-जिस अन्न का होला होता है उसमें उसी-उसी अन्न का गुण होता है। बसन्त ऋतु में नए अन्न से (येष्ट) यज्ञ करते हैं इसीलिए इस पर्व का नाम वासन्ती नव सस्येष्टि है। 'होलक' का यह स्वास्थ्यवर्धक व सुहावना मौसम ही होलिका का जनक है। आप प्रतिवर्ष होली जलाते हो, उसमें 'आखत' डालते हो, जो आखत है वो 'अक्षत' का अपभ्रंश रूप है, अक्षत चावल को कहते हैं। अवधी भाषा में आखत (अक्षत) आहुति को कहते हैं। आहुति चाहे चावल की हो अथवा गेहूँ व जौ की बात की हो या यह सब यज्ञ की ही प्रक्रिया है क्योंकि यज्ञ में स्विष्टकृत आहुति चावल अथवा गेहूँ के बने अन्न से दी जाती है। इसी प्रकार जो आप जल के द्वारा होली की परिक्रमा करते हैं वह क्रिया भी यज्ञ में जल प्रसेचन की प्रक्रिया है। जो यज्ञमान के द्वारा सम्पन्न की जाती है। पूर्वकाल में भारतवर्ष में नव सस्योष्ट यज्ञ सामूहिक रूप से किए जाते थे यह यज्ञ शरद ऋतु की पूर्णिमा की अमावस्या व ग्रीष्म ऋतु की पूर्णिमा को किए जाते थे। चारों वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) परस्पर मिलकर इस होली रूपी विशाल यज्ञ को सम्पन्न करते थे और भी एक कारण इसके पीछे यह था कि प्राचीन आर्य लोग अग्निहोत्र के द्वारा वायुशुद्धि तथा आयोग्य प्राप्त किया करते थे। वैसे तो भारत में प्रत्येक कार्य करने से पूर्व हवन किया जाता है, किन्तु विशेष रूप से ऋतु परिवर्तन (ऋतु सन्धि) के समय बृहद् यज्ञों का प्राचीनकाल से ही प्रचलन रहा है। इसका कारण यह है कि ऋतु-सन्धि अनेक रोग उत्पन्न करती है। इस व्याधियों का निवारण भैषज्य (औषध) यज्ञों के द्वारा होता है। शतपथब्राह्मण में इसकी पुष्टि की गई है–भैषज्ययज्ञा वा एते। ऋतुसन्धिषु व्याधिर्जायते तस्मादृतृसन्धिषु प्रयुज्यन्ते।। "ये भैषज्य यज्ञ कहलाते हैं। ऋतुओं की सन्धि में व्याधियाँ उत्पन्न होती है, इसलिए इनका प्रयोग ऋतु-सन्धि में होता है।" भारतीय घरों में नया अन्न अग्नि में अर्पित किये बिना प्रयोग में नहीं लाया जाता था। प्रत्येक ऋतु में उस ऋतु के पदार्थों द्वारा यज्ञ करने की प्रथा रही है। सम्भवतः विशेष मौसम में उत्पन्न होने वाले पदार्थ उस समय के रोगों को दूर करने में अधिक उपयोगी होंगे इसलिए उनके निवारण के लिए यह यज्ञ किये जाते थे, यह होली हेमन्त और बसन्त ऋतु का योग है रोग निवारण के लिए यज्ञ ही सर्वोत्तम साधन है।

प्रिय सज्जनों ! अब आप होली के वास्तविक स्वरूप व सत्य सनातन वैदिक परम्परा के अनुसार होली नया अन्न का प्रतीक है। यह समझ ही गए होंगे। अतः परम्परा के द्वारा प्रदत्त बुद्धि का प्रयोग करें व सत्य-असत्य का निर्णय करके हिन्दुओं की अपनी प्राचीन वैदिक परम्परा के अनुसार बृहद् सामूहिक यज्ञों द्वारा होलिकोत्सव को सार्थक करें।

डॉ. गंगा शरण आर्य (डी.एन.वाई.) व मास्टर कॉस्मिक एनर्जी हिलर

समाचार

बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा, पटना द्वारा प्रायोजित वेद प्रचार कार्यक्रम पूर्ण सफलता के साथ मनाया गया।

बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा पटना के मार्गदर्शन में समस्त बिहार में वेद प्रचार की धूम मच गई। आर्य समाज के पदाधिकारियों एवं सदस्यों ने वेद प्रचार हेतु काफी योगदान दिया। युवाओं ने बढ़-चढ़कर भाग लिया।

1. आर्य समाज व्यापुर, पटना के द्वारा 30-31 मार्च से 1-2 अप्रैल 2016 तक भव्य वेद प्रचार का आयोजन किया गया। इस अवसर पर आचार्य पवन वीर बुलन्दशहर, आचार्या ज्योत्सना वेदरत्न मध्य प्रदेश, पं. संजय सत्यार्थी पटना के पावन व्याख्यान हुए साथ ही पं. कुलदीप विद्यार्थी, बिजनौर के भजनों से श्रोता सराबोर हो गये।

बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री भाई वीरेन्द्र, मंत्री, रमेन्द्र कुमार गुप्ता, उप प्रधान श्री रामानन्द प्र. आर्य आदि की गरिमामयी उपस्थिति से आर्य जनता में उत्साह का संचार हुआ। इस कार्यक्रम का प्रभाव काफी सराहनीय रहा। लोगों ने दैनिक यज्ञ करने का संकल्प लिया। उस समय से लेकर आज तक वहाँ दैनिक यज्ञ आज भी जारी है। यहाँ के पदाधिकारी श्री अरुण कुमार आर्य प्रधान श्री सतीश कुमार आर्य मंत्री, श्री रौशन कुमार आर्य आदि आर्यों ने काफी पुरुषार्थ कर कार्यक्रम को सफल बनाया।

2. आर्य समाज ढाका (पू. चम्पारण) का वार्षिकोत्सव 4 से 7 अप्रैल 2016 तक मनाया गया। यहाँ पं. महेन्द्र पाल आर्य, कोलकाता, पं. संजय सत्यार्थी, पटना, पं. कुलदीप विद्यार्थी बिजनौर, बहन प्रियंका आर्या राजस्थान आमंत्रित विद्वान के रूप में आमंत्रित थे। बाल भजनोपदेशक सोमेन्द्र आर्य मुगलसराय से आकर बहुत ही अच्छा कार्यक्रम दिया। हजारों की हाजरी में श्रोताओं ने विद्वानों के भजन और प्रवचन सुने। पं. ध्रुव नारायण आर्य ने यज्ञ का सारा कार्य सम्भाला।

इस अवसर बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा के मंत्री श्री रमेन्द्र कुमार गुप्ता, उप प्रधान श्री विजय कुमार सिंगला आदि ने भी भाग लिये। स्थानीय मंत्री श्री जी ने समस्त कार्यक्रम का कुशल संचालन किया तथा प्रधान श्री चन्द्रदेव आर्य जी ने मार्गदर्शन कर कार्यक्रम को सफल बनाया। उस कार्यक्रम की सफलता के लिये ओमप्रकाश जी का पुरुषार्थ काफी काम आया।

3. आर्य समाज लखना, पटना का उत्सव 8, 9, एवं 10 अप्रैल, 2016 तक समारोहपूर्वक मनाया गया। इस अवसर पर यज्ञ, भजन, प्रवपचन एवं वेद कथा का आयोजन किया गया। आचार्य हरिशंकर अग्निहोत्री आगरा, बहन अमृता आर्या दिल्ली, पं. भीष्म जी आर्य बिजनौर ने अपने विचारों एवं भजनों के माध्यम से श्रोताओं का मार्गदर्शन किया। सभा मंत्री श्री रमेन्द्र कुमार गुप्ता जी ने अपनी उपस्थिति दर्ज करायी।

4. आर्य समाज वेरथु (नालन्दा) का दो दिवसीय वेद प्रचार उत्सव 14 एवं 15 अप्रैल, 2016 को धूम-धाम से मनाया गया। डॉ. ज्ञानशिला आर्या जी के निर्देशन में पं. संजय सत्यार्थी के उपदेश एवं बहन वेदवती आर्या एवं पं. श्यामानन्द जी आर्य के भजनोपदेश ने श्रोताओं को मंत्र मुग्ध कर दिया। इस अवसर पर श्री धर्मेन्द्र सिंह आर्य, श्रीमति रागिनी आर्या, श्री सुरेश आर्य आदि उपस्थित थे।

5. आर्य समाज नाथनगर, भागलपुर के द्वारा आयोजित चार दिवसीय वेद प्रचार महोत्सव 5 से 8 मई, 2016 तक मनाया गया। इस अवसर पर यज्ञ के ब्रह्मा आचार्य संजय सत्यार्थी, मुख्य वक्ता आचार्य ओमव्रत गाजियाबाद भजन के लिये पं. कुलदीप विद्यार्थी बिजनौर आमंत्रित थे। चार दिन में चार विषयों जैसे आओ लौट चलें वेदों की ओर। धर्म रक्षा सम्मेलन, राष्ट्र रक्षा सम्मेलन एवं महर्षि दयानन्द प्रणीत शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डाला गया। विद्वानों ने इन विषयों पर सारगर्भित व्याख्यान देकर श्रोताओं को ज्ञान गंगा में स्नान करवाया। इन व्याख्यानों का पढ़े लिखे लोगों पर काफी प्रभाव देखा जा रहा है। श्री भगत जी, श्री रामदेव आर्य, श्री सुबोध कुमार आर्य आदि ने कार्यक्रम की सफलता के लिये भागीरथ पुरुषार्थ किया।

अंतरंग सभा की बैठक में सभा प्रधान माननीय भाई वीरेन्द्र जी द्वारा संबोधन।

नवादा में वेद प्रचार महोत्सव

मुद्रित सामग्री

सेवा में,

श्री/मेसर्स..

मो०..

पो०..

जिला..

(प्रेषिती के न मिलने पर यह अंक प्रेषक को ही लौटा दें।)

प्रेषक :
सभा-मंत्री
बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
श्री मुनीश्वरानन्द भवन, नयाटोला
पटना-८०० ००४

स्वत्वाधिकारी, बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा, श्री मुनीश्वरानन्द भवन, नयाटोला, पटना-4 के लिए रमेन्द्र कुमार गुप्ता (मंत्री) द्वारा जय उमा प्रिन्टर्स, पटना द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।